3470

हिन्दी

शीराज़ा

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

जम्मू

6-7/2018

3470

द्विमासिक

ISSN : 2279-0330

शीराज़ा

हिन्दी

जून–जुलाई 2013

प्रमुख संपादक

ख़ालिद बशीर अहमद

(के.ए.एस.)

संपादक

अज़रा चौधरी

J&K ACADEMY OF ART CULTURE & LANGUAGES

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 (Hindi)

June-July 2013

वर्ष : 49 | अंक : 2 | पूर्णांक : 215

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी
जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी
जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : क्लासिक प्रिंटर्ज़, नेशनल हाइवे, बाड़ी ब्राह्माणां, जम्मू,
दूरभाष-(01923)-220243, 94191-49293

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

जम्मू-कश्मीर की भूमि को देवभूमि कहलाने का गौरव प्राप्त है, इसे भारत का ताज भी कहा जाता है। किसी ने अगर अनेकता में एकता के दर्शन करने हों तो इस से बेहतर कोई अन्य प्रदेश कहीं नहीं मिल सकता। इस राज्य के जम्मू, कश्मीर और लद्दाख तीनों प्रदेश सामाजिक तथा सांस्कृतिक भिन्नता के बावजूद एक-दूसरे से संलग्न है। जम्मू इसका प्रवेश द्वार है। जिसे डोगरा प्रदेश कहा जाता है। कश्मीर जिसे धरती पर स्वर्ग की संज्ञा दी जाती है अति मनोरम प्रदेश है। लद्दाख अति शीत प्रदेश है जिसकी सुंदरता के चर्चे आजकल पूरे भारत में हैं। इस की प्रगति एवं उत्थान के लिए सरकार भी विशेष ध्यान दे रही है।

इन तीनों प्रदेशों की भाषा में भी भिन्नता है। जम्मू में डोगरी, कश्मीर में कश्मीरी तथा लद्दाख में लद्दाखी भाषा बोली जाती है। इन के अतिरिक्त यहाँ हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, गोजरी, पहाड़ी, बलती, पोगली, शीना आदि अनेक भाषायें तथा बोलियां बोली जाती हैं। इन का वर्गीकरण प्रांत, समुदाय या वर्ग विशेष के आधार पर किया जा सकता है। डोगरी, कश्मीरी तथा लद्दाखी प्रांतीय भाषायें हैं। पहाड़ी, पोगली, बलती, शीना आदि क्षेत्रीय भाषायें है तथा गोजरी एक वर्ग विशेष की भाषा है। गूजर एक खानाबदोश तथा घुमक्कड़ जाति है। वह राज्यभर के सुदूर पहाड़ों तथा मैदानों में चरागाहों की तलाश में वर्ष भर घूमते रहते हैं। इस समुदाय के लोग कहीं भी बसते हों, सारे गोजरी भाषा ही बोलते हैं। उर्दू इस राज्य की राजभाषा है। इस राज्य का सरकारी कामकाज इसी भाषा में किया जाता है।

यह सभी भाषायें एक परिवार के सदस्यों की मानिंद है तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी को मां का स्थान प्राप्त है। यह परिवार के सभी सदस्यों को जोड़ने का सेतु है। प्रादेशिक भाषाओं में पर्याप्त साहित्य रचा जा रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो साहित्यकार साहित्य सृजन कर रहे हैं उनका साहित्य हिन्दी भाषी राज्यों के साहित्यकारों की निस्बत किसी कदर कम नहीं आंका जा सकता। वह मुख्यधारा के हिन्दी साहित्य में एक अनूठा स्थान रखता है।

कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी इन सभी भाषाओं की प्रगति एवं उत्थान के लिए राज्य भर में कार्यक्रम आयोजित करती रहती है तथा इनमें साहित्य को प्रकाशित कर साहित्यकारों का मनोबल बढ़ाती है। शीराज़ा का प्रस्तुत अंक अकैडमी की इसी कोशिश का परिणाम है। अंक के प्रति आप की राय की हम प्रतीक्षा करेंगे।

अज़रा चौधरी

इस अंक में

- कहानी
  - कथा एक शिला की/महाराज कृष्ण संतोषी /1
  - प्राथमिकता/आशा शैली /6
  - लाल धागा/सीमा श्रोत्रिय /12
  - तीसरा रास्ता/कपिल अनिरुद्ध /15
  - शारदा/पवन चौहान /18
- आलेख
  - धर्मवीर भारती और उनका अंधायुग/डॉ० विभा शुक्ला /23
  - रेगिस्तानी दुबाई में हिन्दी की फुहार/डॉ० बीना बुदकी /32
  - डोगरी कविता में ध्वन्यात्मक शब्दचित्र/प्रो. वेद कुमारी घई /37
  - सूना पिंजरा-इस सदी का कड़वा सच/जसविंदर शर्मा /43
  - लघु कथा कितनी लघु हो/गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र' /46
- निबंध
  - हिमाचली-पहाड़ी काव्य में देश प्रेम/डॉ० पीयूष गुलेरी /48
- गीत
  - अंधेरा तो फ़कत भ्रम है/ जलते रहना दीपक!/ अतुल कनक /61
  - नयन मनहर/रचनाएं रूठतीं/मधुर गंजमुरादाबादी /64
  - गीतिका/रमेश चन्द्रशर्मा 'चन्द्र' /71
  - क्षणिकाएं/सोनिया उपाध्याय /73
- कविताएं
  - मेरी उदासी का सबब/अशोक 'दर्द' /62
  - चिराग/शारदा साहनी/66
  - शून्य/विनोद कुमार गुप्ता /67
  - मां/राज राही /69
- दोहे
  - पर्यावरण के प्रति/डॉ० सुरेश उजाला /70
- लघुकथा
  - ड्यूटी/महक/राधेश्याम 'भारतीय'/74
- बाल कहानी
  - भूल का अहसास/डॉ० राम सिंह यादव /75

❑ अनुवाद

○ लहु का रंग/ कहानी : मूल डोगरी : *तारा दानपुरी*
अनु० : सुनीता भड़वाल /78

❑ नवांकुर

○ अंतिम अभिलाषा/*अशोक कुमार /82*

❑ उपन्यास अंश 'इस सहरा में'

○ लोकतंत्र के शव को ढोता किन्नर-समाज/*राकेश वत्स /84*

❑ समीक्षा

○ हलीम आईना का सशक्त व्यंग्य लेखन/*सुनील शर्मा /95*

○ गांधी और उनका वर्धा : पी.एन.सिंह की दृष्टि में /*मुहम्मद हारून रशीद खान /99*

कहानी

कथा एक शिला की

❑ महाराज कृष्ण संतोषी

(नोट :– यह कहानी एक कश्मीरी लोक-कथा पर आधारित है।)

सुनो नगरवासियो! मैं वह किस्सागो हूं जिसे आप सब भूल गए हैं पर मैं जानता हूं किस्से-कहानियां कभी नहीं मरते। वे प्रतीक्षा करते हैं अपने सुने जाने की।

मैं यह भी जानता हूं कि मैं अब आपके स्नेह का पात्र नहीं रहा। शायद इसलिए कि मेरी कहानियों में आपका समय नहीं बोलता। पर ऐसा नहीं है। कहानियां इतिहास का हिस्सा बने या मिथहास का या फिर लोक कथाओं का, उनका सच किसी भी समय के बाहर नहीं होता। आप यह न समझें मैं कोई लम्बा किस्सा सुनाने के लिए भूमिका बांध रहा हूं। मैं तो सिर्फ चाहता हूं कि आप कहानियों पर विश्वास रखें क्योंकि कहानियां इंसान की दोस्त हैं। वे अतीत और भविष्य के बीच पुल हैं। वे आदमी के दिल में रहना चाहती हैं। उसके सुख-दुख, पाप-पुण्य,जीवन-मरण की साक्षी बनना चाहती हैं। अब जैसे यही कहानी लें। कहने को तो यह बीते दिनों की बात है पर सुनकर आप ही फैसला करें कि क्या कहानी का सच जीवन के सच से बाहर होता है?

हां तो मेरे नगरवासियो! सुनो कहानी....

एक नगर था। बहुत प्राचीन नगर। वहां एक भव्य मंदिर था जिसमें अनेक विशालकाय मूर्तियां थीं। और थीं ग्यारह स्वर्ण घंटियां। प्रत्येक घंटी के लिए राजा ने अलग-अलग ब्राह्मण नियुक्त कर रखे थे। मुख्य स्वर्ण-घंटी अन्य घंटियों से आकार में तनिक बड़ी थी जो मंदिर के गर्भगृह में रखी गई थी। राजा का आदेश था कि प्रातः होते ही राजगुरु जब मुख्य स्वर्ण घंटी बजाएंगे तो उसके बाद ही अन्य ब्राह्मण उसका अनुसरण करते हुए शेष घंटियां बजा सकेंगे। नगर में हर सुबह इन स्वर्ण घंटियों की मधुर ध्वनियां वातावरण को पावन बना देती थीं। जो भी सुनता सात्विक विचारों से भर जाता था।

---

* *113-A/4 आनंद नगर बोड़ी, तालाब तिल्लो, जम्मू-तवी।*

दिन बीत रहे थे इसी सात्विकता में शांत, निर्भय, आनंदमग्न। एक दिन की बात है राजगुरु अपने आवास से मंदिर की ओर आ रहे थे। रास्ते में उन्होंने जो देखा, उससे वह अविभूत हुए। कदम अपने आप रुक गए। मन तेज़ दौड़ने लगा। बहुत तेज। राजगुरु ने देखा कि एक सुंदर स्त्री नदी में नग्न नहा रही थी और उसकी देह की मांसलता स्पष्ट दिख रही थी। वह वहीं ठिठक गये। अपना पद, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी आस्था सब भूलकर देह-सुख की कल्पनाओं में खो गये। इधर स्त्री ने वस्त्र पहने। केश संवारे और चल पड़ी अपने घर की ओर। पीछे-पीछे राजगुरु भी मन में वासना का बवंडर लिए। स्त्री ने जब घर के आंगन में प्रवेश किया तो उसने पीछे मुड़कर देखा। सामने राजगुरु याचक की तरह खड़े थे। स्त्री ने राजगुरु को प्रणाम किया। उनसे आने का कारण पूछा। राजगुरु निर्लज्ज होकर कहने लगा "हे सुंदरी! आज मैं कोई राजगुरु नहीं हूं। आज मैं केवल एक रूपाभिलाषी सौंदर्य का उपासक हूं....."

"क्या चाहते हैं आप गुरु जी ?" स्त्री ने पूछा।

"तुम्हारी देह का सुख !"

जब स्त्री ने राजगुरु का यह कामातुर स्वर सुना वह चौंक गई। पर फिर भी शिष्टाचार तथा सभ्यता दिखाना नहीं भूली। उसने राजगुरु से भीतर चलने की प्रार्थना की। फिर उन्हें आसन पर बिठाया। चतुर बातों से उनका ध्यान वासना से हटाने लगी। राजगुरु स्त्री की चतुराई समझ गया। तुरंत बोला "हे सुंदरी मेरे अर्जित सभी पुण्य तुम ले लो पर मुझ से मेरे धैर्य की परीक्षा मत लो। मैं हूं जन्म-जन्म का अतृप्त..... आज यूं अनादर मत करो मेरी रूपलालसा का..."

"ऐसा भूल कर भी न सोचें आप" स्त्री के स्वर में कंपन था जिसे वह छिपा न सकी।

"फिर विलम्ब किसलिए सुंदरी! समर्पित कर अपनी देह..... अपना यौवन कि मुझसे छूटा जा रहा है मेरा संयम।"

झूठा समर्पण प्रदर्शित करते हुए स्त्री ने कहा-

"मैं तैयार हूं मेरी एक शर्त है।"

"कैसी शर्त ?"

"मुझे मंदिर की स्वर्ण घंटी चाहिए"

एक चुप्पी निःशब्द सारे वातावरण में छा गई बहुत देर तक।

मंदिर के प्रागंण में सब ब्राह्मण टहल रहे हैं। कुछ चिंताग्रस्त... कुछ आशंकित.. कुछ

विचार मग्न। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि राजगुरु मंदिर आना भूल गए हों।

लगता है कहीं कुछ अशुभ घटा है। सब ब्राह्मण एक दूसरे से विचार कर रहे हैं। अब क्या करें? राजगुरु के बिना कैसे बजाएंगे स्वर्णघंटियां। कैसे करें राजा की आज्ञा का उल्लंघन। जब तक राजगुरु न हों उपस्थित, बंधे रहेंगे उनके हाथ। क्यों न कोतवाल तक बात पहुंचाई जाए। हां, हां यही ठीक रहेगा...हम में से ज्येष्ठ ब्राह्मण कोतवाल के पास जाएगा....हां, हां ज्येष्ठ ब्राह्मण .....

बात कोतवाल तक पहुंची। कोतवाल से मंत्री तक। मंत्री से राजा तक। राजा ने सुना तो आगबबूला हुआ। तत्काल आदेश दिया। राजगुरु को दरबार में उपस्थित होने के लिए कहा जाए।

जब राजगुरु दरबार में उपस्थित हुए तो राजा ने पूछा-

''आज मंदिर में स्वर्ण घंटियां क्यों नहीं बजीं राजगुरु''

''महाराज! मैं नियत समय पर ही मंदिर आया था पर जब देखा....''

''क्या देखा....? राजा ने अधीरता प्रकट की''

''महाराज! मैंने देखा गर्भगृह से स्वर्ण घंटी गायब थी''

''क्या....!''

''हां महाराज ! मैं सच बोल रहा हूं। मुझ से सहन नहीं हुआ स्वर्ण घंटी का गायब हो जाना और मैं घर लौट आया शोक से भरा...''

''पर मुझे सूचित क्यों नहीं किया? राजा ने पूछा।''

''क्षमा करें महाराज! मैं कहने का साहस नहीं जुटा पाया।''

सभा में उपस्थित गणमान्य सदस्यों ने जब सुना तो सकते में आ गए। वे सब एक-दूसरे से आंखों ही आंखों में पूछने लगे कि कौन हो सकता है ऐसा जिसे अपनी मृत्यु का भय नहीं। सबके भीतर एक ही विचार घुमड़ रहा था। चोर कैसे पकड़ा जाए।

कहते है जब चोर पकड़ने की सब विधियां असफल हुईं तो सारे नगर में नगाड़े पर यह घोषणा करवा दी गई कि यदि चोर अपने आप समर्पण करेगा तो राजा उसे क्षमा कर देगा और साथ ही उपहार स्वरूप कुछ धन भी देगा। पर सभी घोषणाएं विफल हुईं। राजा, मंत्री, सेनानायक, प्रजा सब संशय में सोचते रहे कि अब शायद मंदिर में कभी नहीं बजेंगी स्वर्ण घंटियां।

दिन बीत रहे थे और हर दिन का सूर्यास्त निराशा का तमस और घना कर देता। पर हर सुबह नया उगता सूर्य पुनः जीवित कर देता सबका विश्वास कि चोर जरूर समर्पण कर देगा और राजा के सन्मुख नतमस्तक होगा और अपना अपराध स्वीकार करेगा।

कहते हैं एक दिन राजा के द्वार पर एक सुंदर स्त्री उपस्थित हुई। उसने द्वारपाल से कहा कि वह जानती है कि स्वर्ण घंटी कहां है। बात भीतर महल में पहुंची। राजा ने स्त्री को दरबार में उपस्थित करने को कहा। जब स्त्री दरबार में लाई गई तो राजा ने उससे पूछा कि कहां है स्वर्ण घंटी?

स्त्री ने हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में कहा।

''महाराज! मैं कोई चोर नहीं हूं पर मैं जानती हूं कि चोर कौन है।''

''शीघ्र बताओ!'' राजा ने अधीरता से कहा।

''महाराज! वह कोई और नहीं, आपका राजगुरु है.... ''

असंभव! असंभव! कई स्वर एक साथ स्त्री के इस कथन का विरोध करने लगे। राजगुरु कभी ऐसा नहीं कर सकते। सभा में प्रत्येक चेहरा अनिश्चय और अविश्वास में झूल रहा था.....

स्त्री ने पुनः कहना शुरू किया।

''महाराज! मैं झूठ नहीं बोलूंगी। राजगुरु मेरे पास देहसुख की अभिलाषा से आये थे। मैंने उन्हें बहुत मना किया पर वह मदोन्मत मेरे सामने याचक बनकर खड़े रहे। महाराज मैं बता नहीं सकती कि उस समय मुझ पर क्या बीत रही थी मैं सोच भी नहीं सकती थी कि कोई धर्मगुरु इस तरह वासना के कूप में गिर सकता हैं। तभी मैंने निर्णय लिया कि उसे ऐसे दंडित करवा के रहूंगी कि जन्म-जन्मांतर तक मुक्त न हो सके।''

''और तुमने स्वर्ण घंटी की शर्त रखी?''

''हां महाराज''

सभा में आक्रोश फैलने लगा और समवेत स्वर गूंजने लगे। राजगुरु को घोर दंड दिया जाए।

इधर राजा सोच में पड़ गया। आखिर वह क्या करें? राजगुरु को दंड देने का अधिकार उसके पास नहीं है। पर दंड तो उसे अवश्य ही मिलना चाहिए। राजा के सोच का रथ चलने लगा और चलता ही रहा जब थमा तो राजा यह फैसला ले चुका था कि राजगुरु को दंड

केवल धर्माचार्य ही दे सकते हैं जो समीप के वन में रहते हैं। और वही जाना होगा और आचार्य से न्याय की प्रार्थना करनी होगी....

कहते हैं धर्माचार्य ने जब सारा वृतांत सुना तो तत्काल राजगुरु को शाप दिया कि वह शिला बन जाए। देखते ही देखते एक मानव देह शिला में बदल गई। आचार्य ने राजा को यह भी आज्ञा दी कि इस शिला को मंदिर में ही चुनवा दिया जाएं, जहां आते जाते लोगों के पांव उसे कुचलते रहें और उसे अपने पाप का बोध कराते रहें।

कहते हैं जब शिला को मंदिर ले जाने का प्रयास हुआ तो वह तनिक भी न हिली। काफी प्रयास किए गए पर सब व्यर्थ। धर्माचार्य से जब इस का कारण पूछा गया तो उन्होंने स्पष्ट किया कि राजगुरु के पास दस ब्राह्मणों का अतिरिक्त बल था। अतः ग्यारह ब्राह्मण एक साथ मिल कर ही इस शिला को उठा सकेंगे।

तब से शताब्दियां बीत गई हैं। पर आज भी वह शिला विजयेश्वर नगर के उस मंदिर में मौजूद है जो अब वितस्ता के किनारे खंडहर हो चुका है।

o

कहानी

प्राथमिकता

❑ आशा शैली

कई महीनों से वर्मा जी के दाँत हिल रहे थे। उन्हें कैसा भी भोजन चबाने में दिक्कत आ रही थी। इसका सीधा असर उनकी पाचन क्रिया पर पड़ना ही था, सो उनका पेट खराब रहने लगा। उन्होंने चार दाँत ऊपर और दो दाँत नीचे के जबड़े में नकली लगवा रखे थे। कई साल हो गए थे, दाँत ठीक ही काम कर रहे थे। पर अचानक ही दोनों सैट हिलने लगे।

वर्मा जी रोज ही सोचते कि डाक्टर के पास हो आएँ पर डॉक्टर पता नहीं कितना खर्चा बता दे, सोचकर चुपचाप अपने काम में लग जाते। बात केवल पेट ख़राब रहने की ही होती तो भी कोई बात नहीं थी, लेकिन दाँत हिलने के कारण उनके बात करने का अन्दाज भी कुछ गड़बड़ा गया था। कई बार तो सुनन्दा ने ही उन्हें टोक दिया था, बात स्पष्ट नहीं सुनाई देने से वह बार-बार पूछती थी,

''क्या कहा ?'' तो वर्मा जी खीज उठते थे।

''अरे, मैं क्या फारसी में बोल रहा हूँ? जो बार-बार क्या-क्या कर रही हो?'' पर वह जानते थे कि उनके उच्चारण में अन्तर आ गया है। इससे उनके मन में एक हीन भावना भी पनपने लगी थी और वह अधिकतर चुप रहने लगे थे।

वर्मा जी, यानि कुलदीप सिंह वर्मा ने वैसे तो अपने समय में एम.ए. पास किया था। आज चाहे एम.ए. की कोई मान्यता न हो पर जिन दिनों वर्मा जी पढ़ रहे थे, उस समय एम.ए. करने वाले की बहुत बड़ी इज्जत हुआ करती थी। उनके माता-पिता ने अपनी हैसियत न होते हुए भी बेटे की इच्छा के अनुसार उसे एम.ए. की पढ़ाई करने में भरपूर मदद की थी। कुलदीप सिंह ने भी पूरी लगन और मेहनत से पढ़ाई पूरी की और प्रथम श्रेणी में इतिहास में एम.ए. की परीक्षा पास की, परन्तु भाग्य का लेखा कौन मिटा सका है? बरसों भटकने के बाद भी उसे सरकारी नौकरी नहीं मिली।

इधर कुलदीप सिंह नौकरी के लिए इंटरव्यू पर इंटरव्यू दिए जा रहे थे और उधर उनकी उमर उन्हें धोखा दिए जा रही थी। मरता क्या न करता वाली कहावत के अनुसार आखिरकार

---

* *कार रोड, बिंदुखत्ता, पो. लालकुआँ, जिला नैनीताल (उत्तराखण्ड) 262402 मो. 9456717150, 895811053*
asha.shailly@gmail.com. shailsutra@gmail.com.

थक हार कर उन्होंने एक प्रिंटिंग प्रैस में नौकरी कर ली और सुन्दर से फ्रेम में मढ़ा हुआ एम.ए. का सर्टिफिकेट घर दीवार की शोभा बना रहा। कुलदीप सिंह के जहाँ नौकरी मिली वह प्रैस बहुत बड़ा था। वहाँ और भी बहुत से लोग काम करते थे। यहाँ उन्हें नौकरी भी क्लर्क की मिली थी, इसलिए परिवार संतुष्ट हो गया। धीरे-धीरे कुलदीप सिंह के स्टाफ के सभी लोगों के साथ अच्छे सम्बंध बन गए। आज की तरह तब न तो कम्प्यूटर थे और न ऑफसैट प्रैस, बल्कि छपाई का सारा काम हाथ से होता था। कुलदीप वर्मा को जब भी फुर्सत मिलती वह कम्पोज़िटरों के पास बैठते और बड़े ध्यान से उन्हें एक-एक अक्षर जोड़कर पूरा अखबार या कोई किताब बनाते देखते रहते। बीच-बीच में उन्हें कोई 'की' भी उठाकर दे देते थे। कम्पोज़िटरों के पास बैठते-बैठते उन्हें याद हो गया था कि कौन सी 'की' किस खाने में रखी है।

प्रैस चूंकि निजी संस्थान का था अत: वेतन भी कोई बहुत अधिक नहीं था, बस काम चलाऊ ही था। कुलदीप सिंह वर्मा ने प्रैस के लिए कुछ अतिरिक्त काम जुटाने के प्रयास किए और वे कामयाब हो गए। मालिक और मैनेजर दोनों प्रसन्न थे। जब कुलदीप सिंह वर्मा ने अतिरिक्त आय का साधन जुटा लिया तो साधारण-सी एक कन्या सुनन्दा से उनका विवाह भी हो गया और जीवन सुचारू रूप से चलने लगा।

सुनन्दा बहुत चपल भी नहीं थी और मूर्ख भी नहीं, बस साधारण घर-गृहस्थी के योग्य ही थी। समय पर वर्मा जी को उनकी जरूरत की हर चीज़ मिल जाती, इसलिए वर्मा जी पूर्ण-रूपेण संतुष्ट थे । फिर कुछ ही समय बाद उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हो गई, फिर एक कन्या और फिर एक पुत्र। इस तरह वर्मा जी तीन संतानों के पिता बन गए। इस बीच बर्जुगों का साया भी उनके सिर से उठ गया पर गृहस्थी तो पूरी हो गई थी।

गुजरते समय के साथ वर्मा जी अपने दायित्वों से भी मुक्ति पाते गए। एक बेटा डॉक्टर हो गया तो दूसरे ने अपना व्यवसाय कर लिया। बेटी की शादी भी ठीक जगह पर हो गई और वर्मा जी ने भी बुढ़ापे की ओर कदम रख दिया। डॉक्टर बेटे के पास तो सरकारी नौकरी का बड़ा सुदृढ़ किला था सो वह अपने परिवार के साथ दूसरे शहर में रहने लगा था, कभी-कभार फोन कर लिया तो हो गया,पर छोटा बेटा अपने व्यवसाय के बहाने पुराना घर छोटा होने का बहाना बनाकर अलग रहने लगा था। वैसे यह बात अलग है कि उसने शहर ही में बड़ा-सा घर बना लिया था। बेटी आती और चार दिन रहकर लौट जाती। भाइयों के व्यवहार पर कुढ़ती-झींकती पर वह कर भी क्या कर सकती थी। वर्माजी बदलते समय के प्रभाव को चुपचाप देखते रहते और किसी से कुछ भी शिकायत नहीं करते। इस बीच प्रैस के पुराने मालिक का भी देहांत हो गया था। मालिक के दोनों बेटों में बंटवारा हुआ तो बड़े बेटे ने प्रैस सँभाल लिया था।

अब वर्मा जी को नौकरी से भी जवाब मिल गया। एक दिन प्रैस के नए मालिक ने उन्हें बुला कर उनके हाथ में 50,000/-हज़ार का चैक पकड़ाते हुए कहा, "वर्माजी, आपको आराम की जरूरत है। यह महीना पूरा कर लो और इन रुपयों से अपने लिए कुछ खरीद

लेना। आपने बड़ी ईमानदारी से हमारे काम को सँभाला है। यह हमारी तरफ से आपको भेंट है।''

वर्मा जी उन्हें कैसे कहते कि अब इन रुपयों में वे दो प्राणी कब तक रोटी खा पाएँगे। फिर बेटी भी कभी-कभी आ ही जाती है। पर वे कैसे कहते, क्या कहते? इतने दिन मालिक ने उन्हें बुरा-भला भी तो नहीं कहा था। सुनन्दा से भी क्या कहते, वह तो बाहर की दुनिया के व्यवहार से बिल्कुल कोरी थी। वर्मा जी अपनी सीट पर बैठे बड़ी देर तक सोचते रहे कि अब वे क्या करेंगे? सवाल दो जीवों की रोटी का भी था और यह भी कि घर में वे सारा दिन अपना समय कैसे व्यतीत करेंगे?

यदि वर्मा जी सरकारी नौकरी में होते तो भी उन्हें एक दिन सेवा निवृत्त होना ही था, परन्तु वहाँ तो पूरी पेंशन मिलती और आराम से गुजर हो जाती लेकिन अब ? माना कि वर्माजी के दोनों बेटे लखपति हैं पर इससे उन्हें क्या? वह क्या अपने माँ-बाप का दायित्व उठाने वाले बेटों में से हैं? यदि होते तो घर से इस तरह अलग नहीं हो जाते। यह भी गनीमत थी कि मकान पिता जी ने वर्मा जी के नाम पहले ही कर दिया था। छोटे बेटे ने तो इसे भी बेचने की ठान ली थी।

सुन्नदा भले ही बिल्कुल बुद्धू होगी, लेकिन इस मामले में तो वह अड़ ही गई थी। उसकी इसी ज़िद के कारण यह छोटा-सा मकान बच गया। छोटा ही सही, पर अपने दो जनों के लिए काफ़ी है। दो कमरे आँगन के पीछे और एक छोटी बैठक बाहर। बस और क्या चाहिए?

अचानक ही उनकी आँखें चमक उठीं। उनके दफ़्तर में कम्प्यूटर पाँच साल पहले आ गया था। प्रैस भी बदल गया था, ट्रेडल प्रैस के स्थान पर वहाँ पर बड़ी मशीन ऑफ़सैट प्रैस की लग गई थी। वक्त के हिसाब से कम्प्यूटर ऑपरेटर भी आ गया था। काम बढ़ जाने के कारण वर्मा जी को नौकरी से जवाब न देकर मालिकों ने उन्हें कम्प्यूटर सीखने की सलाह दी, जिसे उन्होंने मान लिया और अब वे खूब अच्छे से कम्प्यूटर पर काम करते थे। वर्मा जी को लगा कि मालिक ने जो पचास हज़ार का चैक दिया है उससे वह कम्प्यूटर खरीद कर घर पर काम कर सकते हैं। बस तुरन्त ही उन्होंने उस दिशा में काम करना शुरू कर दिया और महीना खत्म होने से पहले कम्प्यूटर घर में आ गया।

घर के बाहर वाला कमरा खाली ही पड़ा था। किराएदार तो बहुत आए थे पर वर्मा जी ने उस कमरे को किराए पर पता नहीं क्या सोच कर नहीं उठाया था, आज वही कमरा उनके काम आ गया था। उ[illegible] पड़ोस से उन्हें थोड़ा-थोड़ा काम भी मिलने लगा। वे विवाह, जन्मदिन और अन्य उत्[illegible] कार्ड आदि डिजाइन कर देते और मास्टर सीडी बना कर ग्राहक को दे [illegible] किसी भी प्रैस में उन्हें छपवा लेता या वर्माजी ही छपवा कर दे देते। अपने पुराने प्रैस में भी वे बहुत सा काम ले जाते इसलिए वहाँ उनके संबध पूर्ववत् बने हुए थे।

इसी प्रकार वर्माजी ने शहर के कुछ अन्य छोटे-छोटे प्रैसों में भी सम्पर्क कर लिया और उनकी दाल-रोटी चल निकली थी। परन्तु बुढ़ापे में खर्चे भी कुछ बढ़ जाते हैं जैसे शरीर अस्वस्थ रहने के कारण दवाइयों का अतिरिक्त खर्चा झेलना पड़ रहा था। सुनन्दा अक्सर बीमार रहने लगी थी। सारे खर्चे निपटाने के बाद कुछ भी नहीं बचता इसलिए वर्मा जी को अक्सर ही किसी न किसी जरूरी खर्चे में कटौती करनी पड़ जाती।

वर्मा जी दिन-रात मेहनत करके आमदनी बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे परन्तु यह दाँतों वाली नई परेशानी खड़ी हो गई थी। पेट खराब रहने पर काम पर भी दबाव पड़ने लगा था। अब वह दिन का काम डेढ़ दिन में कर पाते। पेट की गड़बड़ से कमज़ोरी आ जाने के कारण ज्यादा देर कम्प्यूटर पर बैठने से उनकी पीठ में दर्द हो जाता। जब वह मुहल्ले के डाक्टर के पास गए तो डॉक्टर ने उन्हें खाना खूब चबा कर खाने की सलाह दे डाली। क्योंकि उसे पता था कि वर्मा जी के कई दाँत नकली हैं। तब वर्मा जी को कहना ही पड़ गया।

''डॉक्टर साहब, दाँत तो सभी हिल रहे हैं, अब क्या चबा कर खाऊँ ?'' यह देखिए उन्होंने ऊपर-नीचे के दोनों दाँत हिलाकर दिखा दिए।

''वर्मा जी!'' डॉक्टर ने हँसते हुए कहा, ''जब आप ठीक से खा ही नहीं पा रहे तो फिर पेट तो गड़बड़ करेगा ही। पहले अपने दाँत ठीक कराइए। जाइए डाक्टर को दाँत दिखा लीजिए।''

''ठीक है।'' कह कर वर्मा जी वहाँ से उठ आए। मन ही मन में जेब में रखे रुपयों का हिसाब लगाते गली के नुक्कड़ वाले दाँतों के डॉक्टर के पास चल दिए। किसी बड़े डॉक्टर को दिखाने की तो वह सोच ही नहीं सकते थे। अब छः दाँत लगाने के यह डॉक्टर भी कितने रुपए माँगेगा पता नहीं। पर जाना तो पड़ेगा ही। इसके बगैर तो काम चलने वाला नहीं है। क्या पता वह इन्हीं दाँतों को कस दे तो शायद थोड़े पैसों में काम चल जाए। सोचते-सोचते ही वह डॉक्टर की क्लीनिक में पहुँच गए।

डॉक्टर ने उन्हें चैम्बर में बैठाकर दाँतों का अच्छी तरह से निरीक्षण किया और सिर हिलाते हुए बोला, ''वर्मा जी! दाँत तो नए ही लगाने पड़ेंगे। पूरा मसाला हिल गया है। आपने बहुत दिनों से दाँत दिखाए भी तो नहीं । जब थोड़ा-थोड़ा हिलने लगे थे अगर तभी आ जाते तो इतने बीमार तो नहीं पड़ते ना।''

''ठीक कह रहे हैं आप, बस समय ही नहीं मिला। कुछ काम ही ज्यादा था। उसे निपटाते-निपटाते आप दुकान बंद कर देते थे। बस ऐसे ही रह गया।'' फिर कुछ रुकते हुए झिझकते-झिझकते बोले, ''क्या सारे दाँत नए लगेंगे?''

''हाँ! अब तो नकली दाँतों के साथ वाले और भी दाँत खराब हो गए हैं। एक ऊपर का और एक नीचे का। कुल आठ दाँत लगेंगे? ''

''डॉक्टर साहब, पैसे कितने लगेंगे?''

''वैसे तो दो हज़ार लगते पर आप पुराने ग्राहक भी हैं और अपनी गली के हैं, आपसे 15 सौ ले लूँगा। चलिए नाप ले लूँ।''

''अभी तो मैं जरूरी काम से जा रहा था, यूँ ही आपके पास चला आया। मैं एडवांस के पैसे भी नहीं लेकर आया। कल आता हूँ। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए।'' कहते हुए वर्माजी उठ खड़े हुए।

''ठीक है, जब समय लगे आ जाइए।''

वर्मा जी घर पहुँचने तक 15 सौ रुपयों का हिसाब लगाते रहे, कितने दिन में इकट्ठे कर पाएँगे वह इतने पैसे। घर में अभी राशन तो पूरा है। दो लोगों का काम किया हुआ है। 500/-तो वहाँ से मिल ही जाएगा। वह अपने पूरे काम का निरीक्षण करने लगे, परन्तु कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर वे 1500/- रुपए का प्रबन्ध कैसे करेंगे?

घर पहुँच कर जब उन्होंने सुनन्दा को बताया कि डॉक्टर ने 1500/- रुपए का खर्च बताया है तो सुनन्दा ने कहा कि चार सौ रुपए उसके पास भी पड़े हुए हैं वे भी ले सकते हैं, तो वर्मा जी बिफर गए ''रहने दो उन्हें! किसी आड़े वक्त में काम आएँगे वे रुपए।''

''आप बीमार हैं, आप को इलाज के लिए पैसे चाहिए, इससे आड़ा वक्त कैसा होता है? जरा बताइए तो?'' वर्मा जी सुनन्दा का मुँह देखने लगे। वह तो समझते थे कि सुनन्दा निरी मूर्ख है, पर नहीं, वह इतना तो समझती ही है।

''चलो आपकी बात मान भी लें तो, बाकी का तो इन्तज़ाम करना ही पड़ेगा न, दो सौ मेरे पास हैं। कुल मिलाकर छः सौ हो गए। डॉक्टर को एडवांस में 500/- रुपए दे देंगे और बाकी का इंतज़ाम करते हैं। मैं प्रैस जाता हूँ, शायद कुछ और काम बन जाए।'' कह कर वह बाहर निकल गए।

वापस लौटते उन्हें देर हो गई। सुनन्दा वर्माजी के लिए बहुत परेशान थी, बाहर से लौटकर वर्माजी ने बताया कि काम तो बहुत मिल गया है परन्तु समय पर पैसा मिल जाए इसकी कोई गारन्टी नहीं हैं। हाँ! मिलेगा तो जरूर, ''ऐसा करते हैं, अभी कुछ दिन और रुक जाते हैं। जैसा चल रहा है चलने दो पैसा हाथ में आने के बाद ही डॉक्टर के पास जाऊँगा। अभी और चार दिन दाँत न लगने से ऐसा क्या नुक्सान हो जाने वाला है?'' और वह अपने कम्प्यूटर पर जा बैठे।

दो दिनों में और चार सौ रुपए आ गए, पर एक सौ खर्च भी हो गए बाकी बचे तीन सौ रुपये उन्होंने सुनन्दा को दे दिए। इसी तरह रोज जितने कमाते उनमें से कुछ न कुछ खर्च भी हो जाता। कभी दूध, कभी दवाई, कभी कुछ और खत्म हो जाता। एक हज़ार जमा करते-

करते एक सप्ताह लग गया। आज वर्माजी ने सोचा कि एक हज़ार में से छः सौ डॉक्टर को एडवांस दे आएँ तो बाकी के लिए कुछ समय मिल ही जाएगा। फिर वह 500/-भी तो लेने हैं। कितनी बार हो आया हूँ, पर दोनों लोग घर में ही नहीं मिलते। आज पिछला काम तो खत्म हो जाएगा। प्रैस जाकर और काम भी लाना है। वर्मा जी ने कम्प्यूटर पर जल्दी-जल्दी हाथ चलाना शुरू किया, पर यह क्या? अचानक कम्प्यूटर पर रंग-बिरंगी धारियाँ बनने लगीं और वह हिलने भी लगीं। वर्मा जी ने घबराकर कम्प्यूटर बंद कर दिया।

थोड़ी देर बाद फिर से उसे खोला तो फिर वही रंग-बिरंगी धारियाँ कम्प्यूटर पर नाचने लगीं। दूसरी बार कम्प्यूटर बंद कर दिया फिर तीसरी बार भी जब वही हुआ तो वर्माजी स्विच ऑफ करके उठ खड़े हुए। मन ही मन कुड़बुड़ा उठे, यह नई मुसीबत आ गई। अब मकैनिक को तो बुलाना ही पड़ेगा। कुछ भी न हुआ तो वह हाथ लगाने के ही सौ रुपए ले लेगा। पर उसके बिना चलेगा भी तो नहीं। रात हो गई है, अब आराम करते हैं। सुबह देखा जाएगा। सोचकर वर्माजी घर के भीतर चले गए।

सुबह मकैनिक आया तो उसने कहा "वर्माजी मदर बोर्ड बदलना पड़ेगा। इसके साथ ही कुछ तार भी जल गए हैं वे बदलने पड़ेंगे। 1000/- का खर्च है। आप कहें तो बदल दूँ ?"

पति-पत्नी ने एक दूसरे की तरफ देखा, फिर वर्मा जी की आवाज़ सुनाई दी। "यह तो करना ही पड़ेगा, वरना मैं करूँगा क्या? आप इसे ठीक कर दीजिए।"

o

कहानी

लाल धागा

❑ सीमा श्रोत्रिय

'अमर अमर अमर' इस आवाज को सुनकर अमर रुक गया। उसने पीछे मुड़कर देखा 'माया तुम'। मन में यकायक अनेक प्रश्न कौंध गये तो क्या माया जिन्दा है? उसके मरने की खबर क्या झूठी थी? अमर अवाक् था। वह केवल इतना बोल सका 'तुम- तुम' इसके साथ ही पुरानी यादों की फिल्म उसके दिमाग में तेजी से घूम गयी।

हरिप्रसाद के घर वह अक्सर जाया करता था। वहाँ वह सभी से हिल-मिल गया था और उनके बेटे रूपक से भी उसकी मित्रता गहरी होने लगी। रूपक के विवाह में वह सम्मिलित भी हुआ और रूपक की पत्नी माया भी उससे सहज व्यवहार करती थी किन्तु कई महीने बीत जाने के बाद भी उसने माया को कभी हँसना तो दूर मुस्कुराते हुए भी नहीं देखा। एक अजीब उदासी और विषाद की छाया उसकी सुन्दर मुखाकृति को घेरे रहती। प्रायः चुप-चुप बनी रहती, इसी कारण अमर उससे बात करने में संकोच करता था, फिर भी एक दिन साहस करके उसने माया से उसकी उदासी का कारण पूछ ही लिया किन्तु वह नीची निगाह करके कमरे से बाहर निकल गयी।

समय बीतता गया। इधर एक बार जब वह रूपक के पास मिलने गया माया दिखाई नहीं दी। पहले तो उसने सोचा शायद माया अपने मायके गई होगी किन्तु एक दिन वह रूपक से पूछ ही बैठा 'माया क्या अपने घर गई है?' रूपक से पहले हरिप्रसाद जी तपाक से बोल उठे 'कहां ? वह तो अपनी माँ के घर जाना ही नहीं चाहती।' अमर सोच में पड़ गया। अभी विवाह को समय ही कितना बीता है? कोई जिम्मेदारी भी ऐसी नहीं कि घर न जा सके? क्या कारण है? यह उसे बाद में पता लगा कि कमरे में चुपचाप पड़ी माया सब कुछ सुन रही थी।

संयोगवश एक दिन जब वह रूपक के घर गया दरवाजा माया ने ही खोला। वह प्रायः ड्राइंग रूम में ही बैठा करता था किन्तु आज माया ने उसे बरामदे में ही बैठाया। वह बहुत उदासी भरे स्वर में बोली 'देखिये अमर भाई आप मुझ से बड़े हैं तथा मुझ से सहानुभूति रखते हैं। मुझे यह भी विश्वास है कि यदि मैं आपको अपने जीवन की असलियत बताऊँगी तो आप मेरी मदद की पूरी कोशिश करेंगे लेकिन मैं जानती हूँ कि उससे परिस्थितियाँ और

---

* *8सी, डीडीए फ्लैट, निर्माण विहार, दिल्ली-110092, फोन : 9818161417*

बिगड़ जाएँगी। अतः मेरे विषय में कुछ भी जानने का प्रयास न करें और मुझ से बात भी न करें तो अच्छा है। आप एक मिनट ठहरिये' कहकर वह अन्दर गयी और कलावे का टुकड़ा लिये लौटी। 'आप मेरे बड़े भाई हैं। भविष्य किसी ने नहीं देखा अगले सप्ताह रक्षा बंधन है बहुत से कारण हैं, न तो मैं घर जा पाऊँगी और न ही भाई यहाँ आ पाएँगे। आप इसे स्वीकार कर लें इससे अधिक मैं आपको कुछ नहीं दे सकती' कहते हुए माया ने कलावे का टुकड़ा उसके सामने मेज पर रख दिया। माया की आँखों में आँसू छलक आए। वह नीची निगाह किये कमरे से चली गयी। अमर ने कलावे का टुकड़ा उठा लिया। अब वह वहाँ नहीं ठहर सका और घर चला आया।

एक दिन वह सो कर भी नहीं उठा था कि उसका मोबाइल बज उठा । हैलो अमर तुम फौरन घर चले आओ.....और फोन रुक गया था। आशंकाओं से घिरा हुआ वह रूपक के घर पहुंचा। सभी चुप बैठे थे। बात हरि प्रसाद जी ने की 'बेटे तुम रूपक के साथ पुलिस स्टेशन चले जाओ माया घर से भाग गयी है। उसने जो नोट घर में छोड़ा हैं उसमें लिखा है वह घर से भाग कर आत्महत्या करने जा रही है। अब यह नोट हम पुलिस को देते हैं तो शक हमारे ऊपर ही होगा।'

बस रिपोर्ट तो माया की गुमशुदगी की ही लिखानी है। बाकी पुलिस जाने। हरि प्रसाद, रूपक की माँ तथा रूपक भी इतने सामान्य से लग रहे थे कि वह अवाक् रह गया।

इतने दिन के बाद, उस शहर से इतनी दूर इस पहाड़ी रास्ते पर यदि वह गाड़ी रोक कर चाय पीने नहीं रुकता तो कैसे मिल पाती उसे माया? आज माया सिर उठाकर खड़ी थी, निडर एक चट्टान सी। बोली अमर भाई मुझे माफ करना जब तक रूपक के साथ रही आपसे कुछ नहीं कह सकी। कुछ कहती तो आप निश्चित ही रूपक को समझाते और वह उतना ही मुझ पर अत्याचार करते। वे सभी बेहद लालची हैं। शादी में ही पिताजी ने कर्ज लेकर इनकी मांगे पूरी की थीं फिर हर त्योहार पर ये किसी न किसी बहाने से कुछ न कुछ माँगते ही रहते। इनकी मांगों ने बीमार पिताजी की नाक में दम कर रखा था। भाई जब भी आते इनकी मांगें पूरी करने के लिए कोशिश करते। धीरे-धीरे इनके तानों से तंग आकर भाई ने भी यहां आना छोड़ दिया था। इन्हें तो बस एक नौकरानी और पैसा चाहिए था। सबके सामने मीठा-मीठा बोलने वाले ससुर तथा सास अकेले में अत्यन्त क्रूर हो उठते थे। रूपक तो कई बार हाथ उठा चुका था। पीहर में जाकर पिता की तंगहाली को और बढ़ाना नहीं चाहती थी और ससुराल में रहना असंभव हो गया था। अतः आत्महत्या का निश्चय करके घर से निकली थी। सोचने समझने की उस समय शक्ति नहीं रह गयी थी। पागल जैसी अवस्था में भटकते-भटकते न जाने किस बस में बैठ गयी और यहां निर्जन में उतर गयी। कई दिन की भूखी प्यासी अचेत पड़ी थी। गांव वाले उठा कर मुझे पंचायत भवन ले आए। बस तभी से पंचायत भवन और साथ के स्कूल की देखरेख करती हूं और इस खुली हवा में बंधन मुक्त होकर जी रही हूं। आज जैसी हूं आपके सामने हूं। आपको मेरे कलावे के धागों की सौगन्ध किसी

से कुछ न कहना। फिर कभी आना हो तो वहां ऊपर पंचायत भवन ही मेरा घर है। हाँ, यहां मैं माया नहीं मेरा नाम दुर्गा है।

'फिर आगे' अमर सहसा बोल उठा। वह ठठाकर हंस पड़ी' आगे क्या? आगे के लिए जो सोच विचार कर किया वहीं क्या हुआ अब तो जो सामने आएगा देखा जाएगा।

अमर को आगे दूर जाना था वह माया के पास और रुकना चाहता था किन्तु दिन ढलने वाला था। उसने माया के सिर पर हाथ रखते हुए कहा 'देखो माया तुम्हारा वह लाल धागा मेरी डायरी में रखा है अक्सर उसे देखता था तुम याद आती थीं चलो चलता हूं। यह मेरा कार्ड रख लो कभी कोई बात हो तो फोन करना' और वह आगे बढ़ गया।

o

कहानी

तीसरा रास्ता

❑ कपिल अनिरुद्ध

कार्यालय से निकलने के उपरान्त मैं आज फिर उस दोराहे पर खड़ा हूँ जिस का एक रास्ता सम्बन्धी के विवाह पर्व की ओर जाता है तथा दूसरा रास्ता मित्र मंडली के उस जश्न की ओर जो वे हर माह किसी रेस्तरां में एकत्रित हो कर मनाते हैं। मैं आज फिर दुविधा में हूँ। आज फिर अनिर्णय की स्थिति में हूँ। सम्बन्धी के विवाह पर्व में जाया जाये अथवा मित्रों के जश्न में सम्मिलित हुआ जाये।

वैसे यह पहली दफा नहीं जब मैं दुविधा में घिरा होऊँ। कभी किसी चौराहे पर दुविधा घेर लेती है तो कभी किसी दोराहे पर दो रास्ते भ्रमित करते हैं। कभी कहीं कोई चौराहा अथवा दोराहा नहीं होता परन्तु दोराहें अवश्य होती हैं। परन्तु आज की दुविधा कुछ अजीब है। आज एक रास्ता विवाह पर्व की ओर तो दूसरा रास्ता मित्रों की ओर जाता है और मैं इन दोनों के मध्य खड़ा हूँ बेचैन-परेशान। इसी बेचैनी में मैं नहर किनारे बने सीमेंट के बैंच पर बैठ जाता हूँ और नहर के बहते जल को अनमने ही निहारने लगता हूँ। शायद इस आस में कि यह बहता जल प्रवाह ही मुझे कोई रास्ता सुझायेगा। बहते जल को देखना मात्र ही मेरी मनोस्थिति बदलता आया है, संताप हरता आया है और आज मैं पुण: इस के किनारे एक अजीब सी अनुभूति कर रहा हूँ जिसे शब्दों में बाँधना मेरे लिये संभव नहीं। मेरे हाथ अनायास ही हाथ में पकड़े हैंड बैग से सफेद पन्ने निकाल लाते हैं। एक सफेद पन्ना अब मेरे हाथों में है तथा धीरे-धीरे वह एक कश्ती का रूप आकार ग्रहण कर रहा है। इधर मन भी घूमने लगा है बचपन की गलियों में। बचपन में बनाई कागज़ की कश्तियाँ मानस पटल पर रूप आकार ग्रहण कर रहीं हैं।

...ज़ोरों की बारिश हो रही है। परन्तु बच्चों की टोली अपनी अपनी कश्तियाँ थामें गली में हो रही कश्ती दौड़ में भाग ले रही है। भीगने का कोई डर नहीं। कपड़े गन्दे हो जाने का कोई भय नहीं। एक निश्चिंतता, एक मस्ती सब को घेरे हुए है। किसी की कश्ती पानी में उतरते ही फुस्स हो गई तो कोई तेज़ गति से आगे बढ़ती है। फिर सहज ही कश्ती दौड़ एक प्रतियोगिता में परिवर्तित होने लगती है। हम लोग पानी में कश्तियाँ छोड़ते ही अपने अनुमान के घोड़े दौड़ाने लगते। अधिकतर अपनी ही कश्ती के आगे बढ़ने की, सब से आगे

** 309 कर्नल कालोनी, बोहड़ी, जम्मू, मोबाईल : 9796480351*

हो जाने की घोषणा करते। वैसे हमारी इस घोषणा में कामना का ही स्वर मिला हुआ होता। ...बचपन की वो कश्तियाँ स्मृतियों में आगे बढ़ रही हैं। अचानक मेरी कश्ती किसी पत्थर से टकरा जाती है। सब अपना-अपना अनुमान लगाने लगते हैं। कोई कहता है यह दायीं ओर मुड़ जायेगी तो कोई अन्य उस के बायें किनारे को छू लेने का पूर्वानुमान लगाता है। बायीं तरफ या दायीं तरफ दो ही रास्ते हैं परन्तु किस ने सोचा था तेज़ गति से हवा बहने लगेगी तथा मेरी कश्ती पत्थर रूपी अवरोधक पर विजय पा दौड़ में सब से आगे हो जायेगी। सारी घोषणायें, सभी भविष्यवाणियां, सारे पूर्वानुमान धरे के धरे रह जायेंगे।

बचपन की यादों के तन्तु एक-दूसरे से जुड़ते चले जा रहे हैं। अब कश्तियों का स्थान रंग-बिरंगी पतंगों ने ले लिया है। सारा आकाश हरे, गुलाबी, नीले, पीले पतंगों से सजा है। एक अजब नज़ारा है। बच्चों के विभिन्न गुटों का शोर है। कोई आँखों वाली पतंग का सौदाई है तो कोई दुमदार पतंग की पैरवी करता नज़र आता है। कोई कहता है आँखों वाली दुमदार को काट देगी कोई अन्य इस के विपरीत भविष्यवाणी करता है पर कहीं से काली पतंग इन दोनों को काट अपनी विजय पताका फहरा जयघोष करने लगती है। यह सब क्या है। भावना कुछ कहती है, तर्क कोई दलील देता है परन्तु होता कुछ और ही है। जो होता है वह पकड़ से परे है, बहुत परे, दूर बहुत दूर। भावना से परे, विचार से दूर, तर्क की पहुँच से बाहर। मेरे मानस पटल पर उस अजीब से आदमी के यह बोल उभरते हैं। वह कह रहा है-दो रास्ते जो हमें ज्ञात हैं उन से अलग, उन से परे एक रास्ता और भी है-अज्ञात रास्ता-तीसरा रास्ता। ...यह तीसरा रास्ता क्या है ? कोई हवा कश्ती का रुख कैसे मोड़ देती है। कोई बेकार सी पतंग दमदार पतंगों की छुट्टी कैसे कर देती है। अचानक मजदूरों के कुछ बच्चे मुझे घेर लेते हैं। मैं वर्तमान के धरातल पर धकेल दिया जाता हूँ। हर बच्चा मुझ से उस के लिए कश्ती बनाने का आग्रह कर रहा है। निरपेक्ष सा मैं अब अपनी ही दुविधा को दूर से देखता हूँ। सोचता हूँ एक तरफ कुछ ऐसे सम्बन्धी हैं जिन से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया है, दूसरी तरफ है मित्र मण्डली-मित्र कम मण्डली अधिक। सम्बन्धी के जिस विवाह पर्व में सम्मिलित होने के लिए मुझे बुलाया जा रहा है वहाँ सम्बन्ध कम सम्बन्धी अधिक होंगे। वही पुरानी धारणायों, पुरानी बातों को ढोते लोक। साँप के गुज़र जाने के उपरान्त लीक को पीटते लोक। भूतों को भूतों के साथ जोड़ने वाले, भूतकाल में विचरते हुए भूत से। मैं सोचता हूँ वहाँ विवाह पर्व में वस्त्र ही वस्त्रों से मिलेंगे, बाहरी आवरण ही एक-दूसरे से मुखातिब होंगे आडम्बर और प्रदर्शन का बाज़ार गर्म होगा। दूसरी तरफ मित्र मण्डली है। कल्पना के सुनहरे मनलुभावने लोक में जीने वाली मण्डली। इस मण्डली में पुख्ता कुछ नहीं। सब कुछ रेतीले घरोंदे सा है। हवा का एक झोंका ही इन को अपने साथ ले उड़े। भूतकाल और भविष्य के दो रास्तों के बीच हिचकोले खाता मानव कितना बेचारा, कितना निःसहाय। अज्ञात रास्ता वो तीसरा रास्ता कहाँ है। एक तरफ भूतकाल में विचरते सम्बन्धी हैं तो दूसरी तरफ वर्तमान से, ज़मीनी हक़ीकत से कटी मण्डली है परन्तु तीसरा रास्ता कहीं नहीं।

मेरे सामने बच्चों की वही टोली है परन्तु बच्चों वाली उन में कोई बात नहीं। कहीं कोई शरारत, कोई चालाकी, कोई मस्ती उन की आँखों में मुझे नज़र नहीं आती। कहीं कोई शोर नहीं, हंगामा नहीं। सब के सब डरे हुए सहमे हुए से। सब सकुचाते हुए इक आशापूर्ण दृष्टि से मुझे देख रहे हैं। सब की आँखों में कश्ती बनाने का मौन निवेदन है। मेरा अन्तस इस मौन निवेदन को अस्वीकार नहीं कर पाता और मेरे हाथ टिकटिकी बाँध कर देखने वाले बच्चों के लिए कश्तियाँ बनाने लगते हैं। सफेद कागज़ के पन्ने कश्तियों में परिवर्तित होने लगते हैं। बच्चों की नज़रें अब मेरे हाथों पर गढ़ी हैं। सब के हाथों में कश्तियाँ थमा दी जाती हैं। सब की बुझी आँखों में रौनक कुछ लौट आयी है। सब के सब अपनी-अपनी कश्ती को जल प्रवाह में उतारने को आतुर हैं। सब अपनी अपनी कश्ती को पानी में उतारते हैं। चुप्पी टूटने लगती है। मौन पिघलने लगता है। खामोशी भाष्प बन उड़ने लगती है। सब तरफ एक शोर, हुड़दंग, इक हंगामा व्याप्त हो जाता है। डर उल्लास में तथा संकोच मस्ती में परिवर्तित होने लगता है। डरे सहमे बच्चों को उछलते-कूदते देख मेरी आंखों के सामने बचपन की होली के रंग साकार होने लगते हैं। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब के सब नीले-पीले-लाल-गुलाबी रंगों में रंगे हुए। किसी की कोई अलग पहचान नहीं, कोई विशिष्टता नहीं, कोई खासियत नहीं। सब के सब मिलमिला कर होली के रंगों को परिभाषित करते हुए। फिर मानस पटल पर पुनः पतंग उभर आते हैं। मानो होली के रंग नीली-पीली पतंगों में बदल गए हों अथवा बच्चों की होली के रंग में रंगी हुई टोलियां ही आकाश मार्ग से आगे बढ़ रही हों।

इधर वर्तमान में मेरे सामने कश्तियां हैं। छोटी-बड़ी, झूमती-गाती, तैरती-दौड़ती सफ़ेद रंग की कश्तियां। और हैं अपनी भविष्यवाणियों, घोषणायों तथा अनुमानों में घोड़े दौड़ाती बच्चों की टोलियां। सब ओर एक पर्व है, उत्सव है, ज़श्न है। अनुमान लगाये जा रहे हैं। घोषणायें हो रही हैं, जयघोष सब ओर व्याप्त है। परन्तु मैं कुछ भी सुन नहीं पा रहा। मेरे कान में कुछ शब्द गूंज रहे हैं। ...अतीत और भविष्य के दो रास्ते जहां समाप्त होते हैं वहां से तीसरा रास्ता शुरू होता है। यही है वह रास्ता, तीसरा रास्ता। मैं बच्चों की टोली के साथ तीसरे रास्ते पर आगे बढ़ रहा हूँ।

o

कहानी

शारदा

❑ पवन चौहान

रोज की तरह आज भी हरीश काम करके थका-हारा घर पहुंचा। हरीश पास ही की एक फैक्टरी में मजदूरी करता था। पहुंचते ही हरीश ने आवाज़ लगाई, 'शारदा! हाथ-मुंह धोने के लिए थोड़ा गर्म पानी ले आओ।'

शारदा रोज की तरह फटाफट गर्म पानी की आधी बाल्टी लेकर आ गई। यह उसकी दिनचर्या का एक अहम हिस्सा था।

'एक गिलास दूध भी गर्म कर दो।' हाथ-मुंह धोते हुए हरीश ने कहा।

'देखो जी, काका ने भी दूध देने से इन्कार कर दिया है। कहीं और से दूध का इंतजाम कर लो।' दूध का गिलास लेकर आई शारदा ने कहा।

'अपने घर में तीन गायें और एक बकरी के होते हुए हम दूध के लिए तरस रहे हैं। कितने दुख की बात है। और इन सब के लिए काम करने वाली सिर्फ तुम अकेली। कभी-क़भी तो मैं यह सोचता हूं कि इन्हें कहीं छोड़ आऊं। ये तो अब कहीं बेचने के लायक भी नहीं बची हैं। मुझसे अब इनका बोझ नहीं उठाया जाता। पूरा-पूरा दिन खाती रहती हैं। फिर भी कम्बख्तों का पेट नहीं भरता। घास के लिए मुंह फाड़-फाड़ कर चीखती रहती हैं।' हरीश गुस्से में था।

'खबरदार! जो इन्हें कहीं छोड़ने की बात की तो।' शारदा ने हरीश की बात का त्वरित विरोध किया।

'अच्छा, नहीं करुंगा बाबा। मुझे पता है तुम्हें इनसे बहुत प्यार है।' हरीश ने मजाक और व्यंजनात्मक लहजे में हाथ जोड़ते हुए कहा।

हरीश ने इन गायों में से एक को अपने भाई रामू से पालने के लिए कहा भी था लेकिन रामू ने मना कर दिया था। हरीश के वेतन का आधे से ज्यादा हिस्सा तो इन गायों पर ही

गांव व डा. महादेव, तहसील सुन्दरनगर, जिला-मण्डी, हिमाचल प्रदेश-175018, फोन : 098054 02242, 94185 82242, E mail : chauhanpawan78@gmail.com

खर्च हो जाता था। इसी कारण हरीश के बेटे चमन का इस बर्ष कालेज में दाखिला भी देरी से हो पाया था। हरीश के पास अपनी खरीदी हुई सिर्फ एक बीघा जमीन थी। जो इनके परिवार तथा पशुओं के गुजारे के लिए अपर्याप्त थी।

बेटी कविता शारदा के काम में हाथ बंटा दिया करती थी। लेकिन शायद ईश्वर भी कहां ज्यादा देर तक किसी का सुख देख पाता है। पिछले साल वह बहुत बीमार हुई। रुपयों की कमी के चलते उसका सही तरह से इलाज न हो पाया और वह समय भी आया जब वह इस दुनिया को सदा-सदा के लिए छोड़ कर चली गई। डॉक्टरों के अनुसार उसे कैंसर था। बेटी के जाने के बाद शारदा अकेली पड़ गई थी। अब घर का सारा काम शारदा को ही करना पड़ता था। परंतु काम बारे शारदा ने घर वालों से कभी कोई शिकायत नहीं की। उससे जितना बन पाता वह चुपचाप बिना किसी लाग-लपेट के करती रहती थी।

लेकिन इस वर्ष खुदा का कहर भी ऐसा बरपा कि बारिश न के बारबर हुई। फसल तो तबाह हुई ही, घास का भी नामोनिशान मिट गया। शारदा के लिए चार जानवरों के लिए घास इक्कट्ठा कर पाना अब बहुत मुश्किल हो रहा था। लेकिन जानवरों के प्रति उसका प्यार उसे यहां-वहां से घास इक्कट्ठा करने पर बाध्य कर देता था। परंतु इस घास से जानवरों का पेट न भरता और वे दिन भर घास के लिए चिल्लाते रहते थे।

सवेरे उठ कर जानवरों की साफ-सफाई, फिर सुबह का खाना, उसके बाद दिनभर चारे का इंतजाम और फिर शाम का खाना। यह शारदा की दिनचर्या थी जो उसे ही निभानी होती थी। इस कारण शारदा को जरा भी आराम न मिलता। हरीश भी दिन भर अपने काम से थका-हारा होने की वजह से शारदा का ज्यादा हाथ नहीं बंटा पाता था।

चमन को कालेज की पढ़ाई से ही फुरसत नहीं मिल पाती थी। वह हल्का-फुल्का ही काम करता था। चमन को मां और घर की हालत का अंदाजा था। वह इस स्थिति को कई महीनों से देखता आ रहा था। इसलिए उसने घरवालों के समक्ष एक बात रखी। 'हम इन जानवरों की वजह से न तो ढंग से खा पाते हैं और न ही ढंग से आराम कर पाते हैं। घर में हमेशा हबड़ा-दबड़ी मची रहती है। रोज शाम को मैं इन जानवरों के बारे में ही बातें सुनता रहता हूं।' ...आज जानवरों का दाला खत्म हो गया ...आज घास बड़ी मुश्किल से इकट्ठा कर पाई ...आज सिर पर घास उठवाने वाला नहीं मिला। इसे खुद उठाने से कमर में दर्द हो गई है ...बड़ी मुश्किल से रोटी बना पाई हूं आज ...और भी पता नहीं क्या-क्या ? कितना सारा रुपया इन पर ही खर्च हो जाता है और ये फालतू की तकलीफें हमने यूं ही पाल रखी हैं। इसलिए क्यों न हम इन्हें कहीं छोड़ आएं ? मां का बोझ भी हल्का हो जाएगा।'

हरीश ने चमन की बात का समर्थन किया लेकिन यह सुनते ही शारदा तपाक से बोली, 'खबरदार, जो दोबारा ऐसी बात मुंह से निकाली तो! इतने सालों से पाल रही हूं मैं इन्हें। ऐसे ही थोड़े भी अपने से जुदा होने दूंगी इन्हें। और हां! तुम मेरी फिक्र छोड़ दो।'

'लेकिन मां...।' अभी चमन कुछ कहने ही वाला था कि शारदा ने उसे डांटते हुए फिर कहा, 'तू चुप कर! अब तू हमें सिखाएगा कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं ? इतना सा था, तब से लेकर आज तक इनके दूध को पीकर बड़ा हुआ है तू। ये तेरी मां समान हैं। मैंने दिन-रात इनके लिए मेहनत की है। इतने सालों से इन्हें पाल रही हूं। अब ये हमारे परिवार का हिस्सा बन चुकी हैं। क्या अब इन्हें हम अपने स्वार्थ के लिए दर-ब-दर की ठोकरें खाने के लिए छोड़ दें। ताकि ये गर्मी में छाया के लिए तरसती रहें और सर्दी में ठंड से ठिठुरती रहें। नहीं-नहीं ...मैं अपनी आंखों के सामने ऐसा होते हुए नहीं देख सकती। गाय ही तो हमें बैतरनी पार करवाती है। ऐसे पवित्र पशु को मैं यूं नहीं छोड़ने दूंगी।' कहते-कहते शारदा की आंखें भर आईं थी।

'मां, तुम भी कहां ये फिजूल की बातें लेकर बैठ जाती हो। कल किसने देखा है ? तुम आज की सोचो। अगर हम आज सुखी नहीं हैं तो हमारा आने वाला कल कैसे अच्छा होगा ?' चमन ने एक बार फिर कहा।

रोज अब इस बात को लेकर बहस शुरू हो जाती थी। बाप-बेटे के आगे शारदा मिन्नतें करती। लेकिन वे हर बार कोई न कोई सुझाव देकर अपनी बात को मनवाने की हर संभव कोशिश करते। दोनों की मर्जी के आगे धीरे-धीरे शारदा की जिद दम तोड़ने लग पड़ी थी। वह अब ज्यादातर चुप रहने लगी थी। जानवरों के बारे में सोच-सोच कर वह बीमार हो गई। उससे अब ज्यादा काम न हो पाता था। परंतु उससे फिर भी जितना हो पाता वह करती थी।

जानवरों के यूं छोड़ने का भय शारदा के दिल में ऐसा घर कर गया कि उसने बिस्तर पकड़ लिया। एक तरफ शारदा का इलाज तो दूसरी तरफ जानवरों का भरण-पोषण। इस सबका गुस्सा दोनों बाप-बेटे जानवरों पर निकालते। दोनों ही जानवरों को बेरहमी से पीटते और उन्हें तरह-तरह की गालियां बकते। चमन को तो गोबर से हाथ लगाने की हिम्मत न थी। जो भी थोड़ा बहुत बन पाता, हरीश करता। उनकी आंखों को जानवर अब जरा भी न भाते थे। उन्हें देखते ही उनके माथे पर चिंता की रेखाएं खींच जाती थी। इसी के चलते एक दिन हरीश ने बकरी को जैसे-तैसे सस्ते में ही बेच डाला। अब उनके लिए एक बहुत बड़ी समस्या थी तीन दूध न देने वाली गायें। ज़िनका इस हालत में बिक पाना भी मुश्किल था।

शारदा को डाक्टरों ने पूरी तरह से आराम करने की सलाह दी थी। लेकिन वह फिर भी परिवार वालों से छुपकर जैसे-तैसे शरीर को खींचकर पशुओं के पास ले जाती थी। उन्हें देखे बगैर उसको जरा-सी भी तसल्ली नहीं होती थी। लेकिन अब कई दिनों से उसे डाक्टरों ने पशुशाला में जाने के लिए सख्त मनाही कर दी थी। वह भी न चाहते यह सोचकर डॉक्टर की बात मानने को तैयार हो गई कि चलो जल्दी ठीक हो जाऊंगी और फिर जानवरों का अपने आप सही ढंग से ख्याल भी रख पाऊंगी। अब उसका ज्यादा वक्त बिस्तर पर ही गुजरता था। वह बिस्तर पर पड़ी-पड़ी कई तरह के ख्यालों से घिरी रहती थी। वह सोचती, 'आदमी कितना स्वार्थी है। मतलब निकल जाने पर मुंह फेर लेता है। वह दूसरों के साथ तब तक

चिपका रहता है जब तक उसका स्वार्थ हल न हो जाए। चाहे उसके लिए फिर उसे कितने ही नीच कार्य क्यों न करने पड़ जाएं। यह उसकी फितरत है।'

यही कुछ हाल शारदा के परिवार का था। जब तक गाय दूध देती थी तब तक वे उसकी सेवा करते थकते न थे। दूध से भरी बाल्टी देखकर सबकी आंखें चमक उठती थीं। चपाती में देसी घी लगाकर चटखारे से खाते थे। मक्की की रोटी और साग के साथ मक्खन की बात तो और भी निराली थी। घर के दूध की खीर की बात तो क्या कहें ? लस्सी के गिलास पेट की आग को शांत करते थे। उस वक्त तो गायों को देखकर हरीश के मन में कई योजनाएं जन्म लेती थीं। गायों को देखकर उसके चेहरे पर हमेशा रौनक आ जाती थीं। समय-समय पर चारा, पानी व सफाई की जाती थी। परंतु आज समय बदल चुका था। कहां वो दिन और कहां आज का वक्त। जानवर दिन-प्रतिदिन सूखकर कांटे हो रहे थे। उन्हें देखकर तरस आता था। पेट अंदर की ओर धंस चुके थे। पीठ पर हड्डियों का कंकाल साफ नजर आता था। जानवरों की आंखें हमेशा गीली रहती थीं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे अपनी किस्मत पर आंसू बहा रहे हों।

बरसात की वजह से जानवरों को पशुशाला के बाहर कम ही निकाला जाता था। जिस कारण वे शारदा की नजरों में नहीं आते थे। लेकिन आज हरीश और चमन के घर पर न होने की वजह से जब शारदा पशुशाला की तरफ गई और गायों का जब यह हाल देखा तो वह फूट-फूट कर रोने लग पड़ी। शारदा को रोता देख गायों की आंखों से भी आंसुओं की धारा बहने लग पड़ी थी। वे एक-दूसरे का दुख समझ सकते थे। शारदा उनसे घंटों बातें करती रही और उनसे यही कहती रही, 'मुझे माफ कर दो। यह सब मेरे कारण ही हो रहा है। मैं बिमार न होती तो शायद तुम्हारी यह हालत न होती।'

जानवर जिस प्रकार से शारदा के कंधों पर अपना मुंह रख रहे थे उससे यही लग रहा था मानो वे कह रहे हों, 'हम तुम्हारी मजबूरी समझते हैं।' समझते भी क्यों नहीं! इतने वर्षों का रिश्ता जो था।

इतने में हरीश और चमन गाड़ी लेकर आ गए थे। वे गाड़ी में गायों को भरने वाले थे। उन्होंने यह योजना कब तैयार कर ली थी यह शारदा की जानकारी से बाहर था। शारदा ने उन्हें रोका और समझाते हुए कहा, 'देखो जी, जल्दबाजी न करो। मुझे स्वस्थ हो जाने दो। मैं सब कुछ संभाल लूंगी। देर-सवेर ये दूध देना भी शुरू कर देंगी। फिर हम इन्हें बेच देगें। कम से कम यह तसल्ली तो रहेगी कि इन्हें घास-पानी सही समय पर मिल रहा है। ऐसे छोड़ देने से पता नहीं इन बेचारों को क्या-क्या मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी और पता नहीं किस-किस की मार खानी पड़ेगी। आप मेरी बात मान लीजिए न! इन्हें ऐसे मत ले जाओ।'

'शारदा अब पानी सर से ऊपर उठ चुका है। अब मैं इन्हें एक भी पल इस घर में बर्दाश्त नहीं कर सकता। इनकी वजह से तुम्हारी यह हालत हुई है। इनके लिए जितना मर्जी कर लो। हमें अब इनसे कुछ नहीं मिलने वाला है।' हरीश गुस्से में चिल्ला रहा था।

'ऐसा मत कहिए जी। मैं इनके बगैर जिंदा नहीं रह पाऊंगी। इनको मैंने अपने बच्चों की तरह पाला है। मैं इन्हें अपने से जुदा नहीं होने दूंगी। मुझे कितना प्यार करती है ये सब। मुझे देखते ही मां-मां पुकार उठती हैं ये। नहीं नहीं... मैं इन्हें यूं ही भटकने के लिए नहीं छोड़ सकती! मैं इन्हें न ले जाने दूंगी।' शारदा हरीश के आगे गिड़गिड़ा रही थी।

'आज मैं तुम्हारी एक न सुनूंगा। मुझे इन्हें ले जाने दो बस! मेरा रास्ता न रोको।' हरीश ने गुस्से में कहा था।

इस बार शारदा ने हरीश के पैर पकड़ लिए थे। 'तुम्हें याद है। एक बार तुम कितने बिमार पड़ गए थे। इन्हीं गायों के दूध पीकर ही तुम जल्दी स्वस्थ हुए थे। अब ये दूध नहीं देती क्या बस इसके लिए तुम इन्हें कहीं भटकने के लिए छोड़ दोगे ? भगवान ने चाहा°तो ये दोबारा दूध देने लगेंगी। इनका इलाज चल तो रहा है। क्या तुम कुछ दिनों का इंतजार नहीं कर सकते ?'

'अब यह संभव नहीं है।' हरीश ने शारदा की बात को एक तरफ नकारते हुए कहा।

'देखो जी, अगर तुम इन्हें ले गए तो मैं जिंदा न बचूंगी।' शारदा रो पड़ी थी।

हरीश ने शारदा की एक न सुनी। शारदा को एक तरफ धकेल कर हरीश और चमन गायों को गाड़ी में भर कर ले गए। शारदा पशुशाला में ही बैठकर रोती रही।

गायों को उन्होंने एक सुनसान जगह पर उतार दिया। लेकिन कहीं और जाने के बजाए बूढ़ी गाय गाड़ी के पीछे दौड़ पड़ी। ऐसा लग रहा था मानो आज उसमें एक नई चेतना का संचार हुआ हो। आज वह अपनी क्षमता से ज्यादा दौड़ लगा रही थी। लेकिन वह ज्यादा दूर दौड़ न पाई और लड़खड़ाकर वहीं सड़क पर जोर से गिर पड़ी। उसके मुंह से खून की धारा बह निकली और चंद मिनटों में वह वहीं ढेर हो गई।

जब हरीश और चमन घर पहुंचे तो शारदा को अपने कमरे में न पाकर उसे इधर-उधर ढूंढने लगे। शारदा को आस-पड़ोस व हर जगह तलाश किया लेकिन शारदा उन्हें कहीं भी न मिली। अंत में शारदा उन्हें पशुशाला में मिली। वह खूंटे पर अपना सिर रखकर मानो सो रही थी। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी। शारदा मर चुकी थी। हरीश और चमन यह सब देख जोर-जोर से रो पड़े। उन्हें इस अनहोनी का जरा भी अहसास न था। ऐसा लगता था मानो शारदा की जान जैसे उन जानवरों में ही बसी थी। शारदा का जानवरों के प्रति यह असीम प्यार सबके लिए एक मिसाल बन गया था।

o

आलेख

धर्मवीर भारती और उनका अंधायुग

❑ डॉ. विभा शुक्ला

भारती की किशोरावस्था का समय राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारी उथल-पुथल का था एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध तथा राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव दूसरी ओर पितृ वियोग। ये दोनों ही कवि को अंतर्मुखी बना गये और कच्ची उम्र में ही युगबोध को उभार गये। इसी युगबोध की प्रखर अभिव्यक्ति 'अंधायुग' है। यहां आकर 'ठंडालोहा के कवि को' 'अनजान पगध्वनियाँ' अभिशापों से मुक्त करने का आश्वासन देती है।'[1] 'अंधायुग' में कवि जीवन के व्यापक सत्य की उपलब्धि में सफल हुआ है।

सन् 1954 में लिखी गयी यह नाट्यकृति हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व एवं अस्तित्व रखती है। प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त मानव, मानव जीवन, उसकी आस्थाएँ, मर्यादाएँ-सब के टूटने का युग अवतरित हुआ। 'कृष्ण, अर्जुन और दुर्योधन के द्वारा लड़े गये महाभारत के रण ने भी यही परिणाम अपने युग को प्रदान किये थे। जिन अनास्थाओं की पर्तें हमारे युगीन जीवन भर आज छायी हैं, उन्हीं अनास्थाओं के वस्त्र महाभारत काल के राजाओं, नेताओं, सैनिकों एवं रानियों को पहनने, ओढ़ने एवं बिछाने पड़े थे। दो युगों की समानताओं का इस कृति में अच्छा दर्शन मिलता है।'[2] मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का लक्ष्य व्यक्ति की सर्जनात्मक स्वतंत्रता को परिपुष्ट करना है। मानव सभ्यता और संस्कृति का विकास स्वतंत्रता की खोज का इतिहास है। आज मानव इसी खोज के लिए प्रयत्नशील है। जब प्रयत्नों में स्वार्थ समाहित होता है, तब विलासी संस्कृति का विकास होता है। इससे उत्पन्न राजनीति समाज को रोगी बना देती है। परिणाम स्वरूप युद्ध होते हैं और युद्ध के बाद मर्यादाहीनता का युग जन्म लेता है। इसी का चित्रण 'अंधायुग' का उद्देश्य है। कवि ने इस ज्योति कथा को अंधों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है-

'यह कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से,
यह कथा आज की है अतीत के माध्यम से।'[3]

आइवरी, फ्लेट नं. 20 पांचवीं मंजिल प्लेटिनम प्लाजा, टी. टी. नगर भोपाल (म. प्र.) 482003, मो. 9926856086, 9826773240

1. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोहा' पृ.-56

2. पुष्पा वास्कर, 'धर्मवीर भारती: व्यक्तिऔर साहित्यकार' पृ-206

3. धर्मवीर भारती, 'ठंडालोह' पृ.-12

'अंधायुग' का कथानक पौराणिकता एवं काल्पनिकता का समायोजन बनाये रखते हुए गौण रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है। अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ तत्त्व ही उत्पाद्य है। कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएं।[1]

'अंधायुग' महाभारत के अठारहवें दिन के युद्ध व उसके परिणाम से सम्बद्ध है। इसमें कवि ने पौराणिक विषय का आश्रय ले कर समसामयिक बोध को प्रस्तुत किया है। इसकी कथावस्तु एक ओर पौराणिकता के सहारे आधुनिक संवेदना को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर जीवन मूल्यों के विघटन, संक्रमण, क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त विसंगतियों को।

कृति का सम्पूर्ण कथानक पाँच अंकों में विभाजित है। स्थापना से कृति का प्रारम्भ होता है। प्रथम अंक में कौरवों की नगरी का वर्णन है। वहाँ महल में घूमते हुए प्रहरियों के वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि कौरव कुल नष्ट हो गया है। यही धृतराष्ट्र को कृष्ण का मर्यादा सम्बन्धी वक्तव्य याद आता है और वह पहली बार स्वीकारते हैं कि सामाजिक मर्यादाओं का निर्वाह उनसे भली भांति नहीं हो सका। यहीं गांधारी एक कर्तव्य परायण महिला के रूप में चित्रित है। इसी अंक में प्रवेश होता है याचक का और वह सन्देश देता है–

'जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।'[2]

द्वितीय अंक में संजय का प्रवेश होता है। उसकी भेंट कृपाचार्य से होती है। यह दुर्योधन की पराजय स्वीकार करने का दृश्य नहीं देख सके, अत: अपना धनुष तोड़ वन को प्रस्थान कर जाते हैं। इधर अश्वत्थामा आत्म हत्या की बात सोचता है, परन्तु अंत में जीवित रह कर प्रतिशोध की योजना बनाता है। इसी समय संजय का आगमन होता है। अश्वत्थामा उसे पांडवपुत्र समझ कर वध करने हेतु तत्पर हो जाता है।

तृतीय अंक का प्रारम्भ कथा गायन से होता है इसमें कौरवों की पराजय व उनकी कष्टप्रद स्थिति का वर्णन है। इसी अंक में संजय द्वारा दुर्योधन की पराजय की सूचना प्राप्त होती है, युद्ध की समाप्ति के बाद दोपहर तक कौरवों की सेना के टूटे रथ, बचे हुए ब्राह्मण, स्त्रियाँ, चिकित्सक, बूढ़े युद्ध क्षेत्र से लौट आये थे। उसकी सूचना पाकर धृतराष्ट्र अत्यन्त दुखी होते हैं। विदुर उन्हें सांत्वना देते हैं। तभी एक लंगड़े, गूंगे सैनिक और इसके बाद युयुत्सु का प्रवेश होता है। पांडवों की सेना में धृतराष्ट्र का पुत्र युयुत्सु भी सम्मिलित हुआ था, क्योंकि वह दुर्योधन के पक्ष को असत्य का पक्ष और युधिष्ठिर के पक्ष को सत्य का पक्ष समझता था।

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-6
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-26

तृतीय अंक के दूसरे फलक के अंतराल में प्रेतलोक की तरह का वातावरण उपस्थित होता है। अश्वत्थामा द्वारा मारे गये वृद्ध याचक की आत्मा अवतीर्ण होकर सारे युग के अंधेपन को देखती है। इसके पश्चात युयुत्सु स्वयं को पहिया, संजय अपने को कर्मलोक से बहिष्कृत दो बड़े पहियों के बीच लग एक छोटे सा निरर्थक शोभाचक्र तथा विदुर स्वयं को कृष्ण का अनुगामी भक्त और साधारण नीतिज्ञ स्वीकारते हैं। याचक आत्मा युयुत्सु, विदुर और संजय की छायाओं को मंत्र शक्ति से आहूत कर उन्हें उनकी असंगतियों से अवगत कराना चाहती है। छाया लोक में वही आत्मा अन्त में अश्वत्थामा के पांडव शिविर तक जाने और शिव द्वारा रोके जाने की सूचना देती है।

चतुर्थ अंक में गंधारी का शाप विशेष रूप से उल्लेख्य है। यह अंक अत्यन्त भयावह है। दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने पर भी अश्वत्थामा पराजय का मुंह देखता है। जब वह शिव की वन्दना करता है तो प्रसन्न होकर शिव कहते हैं–

'अश्वत्थामा तुम विजयी होगे निश्चय
हो चुका पाण्डवों के पुण्यों का अब क्षय
मैं कृष्ण प्रेम वश
अब तक इनकी रक्षा करता था
मैं विजय दिलाता
इनमें नया पराक्रम भरता था
पर अब अधर्म वध
द्वार उन्होंने स्वतः मृत्यु के खोले।"[1]

इसी आशीर्वाद के फलस्वरूप अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न शिखण्डी एवं अन्य योद्धाओं का वध करता है। कृतवर्मा एवं कृपाचार्य, पाण्डव शिविर में आग लगा देते हैं। गांधारी इस वृतान्त को सुनकर प्रसन्न होती है। वह संजय की दिव्य दृष्टि से अश्वत्थामा के दर्शन करती है। यहीं अश्वत्थामा उत्तरा के गर्भ में ब्रह्मास्त्र फेंक कर दुर्योधन के प्रतिशोध का बदला लेता है, लेकिन विदुर धृतराष्ट्र को सूचना देते हैं कि कृष्ण ने उत्तरा के गर्भ की रक्षा कर ली है। यहाँ कृष्ण अश्वत्थामा को भ्रूण हत्या का शाप देते हैं। फलस्वरूप उसके सारे शरीर में कोढ़ हो ज़ाता है। अश्वत्थामा की इस करुणाजन्य स्थिति को देख गांधारी क्रोधित हो कृष्ण को शाप देती है।

पाँचवा अंक भी कथा गायन से प्रारम्भ होता है इसमें अंधों की परम्परा में महायुद्ध के ध्वंस के बाद राज्य के सिंहासन पर बैठे हुए युधिष्ठिर अत्यन्त चिंतित है और स्वयं को पराजित मानते हैं। भीम मन्दबुद्धि हैं। उसकी कटूक्तियों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र वन को प्रस्थान करते हैं। वन में आग लगने से गांधारी एवं धृतराष्ट्र मर जाते हैं तथा युयुत्सु आत्महत्या कर लेते हैं। प्रहरियों के वार्तालाप से उनके परिवर्तित जीवन का आभास मिलता है। कृपाचार्य युधिष्ठर

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–80

की आत्मघात करने वाली संस्कृति में न रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। युधिष्ठिर की शंका है कि राज्य में अराजकता व्याप रही है। प्रहरियों के वार्तालाप से यह अंक समाप्त होता है।

समापन उपशीर्षक में वन्दना, कथागायन के उपरान्त यादव वंश में बढ़ी कलह एवं कृष्ण द्वारा बन्धु बान्धवों को मार डालने की कथा है। इसके उपरान्त कृष्ण के पैर को मृगमुख समझ कर याचक की प्रेतात्मा वाण चलाती है और गांधारी का शाप सत्य हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि अंधायुग वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध के बाद पनपे मानवीय संकट की कथा है–

'युद्धोपरांत यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं।'[1]

इस महायुद्ध के बाद मूल्यांधता व्यापक स्तर पर फैल गयी। जो हारे वे भी निराश और जो जीते उन्हें भी जीत की खुशी नहीं हुई। इस तथ्य को 'गीतिनाट्य' में युधिष्ठिर के माध्यम से अभिव्यक्ति दी गयी है–

'और विजय क्या है ?
एक लम्बा और धीमा
और तिल-तिल कर फलीभूत
होने वाला आत्मघात।'[2]

भारती ने इसी आत्मघाती विजय के स्वरूप को पहचाना है और उसके मूल कारणों की खोज करके जीवन की ओर मोड़ने का प्रयत्न इस कृति के माध्यम से किया है। 'अंधायुग' की सबसे बड़ी सफलता आत्मघाती अनास्था के कारणों की सही पहचान है। इस पहचान के लिए उन्हें अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करना पड़ा है।

कवि ने जीवन सत्य एवं मर्यादा की प्रतिष्ठा, असत्य अविश्वास, कुण्ठा एवं प्रतिशोध की अत्यधिक यथार्थता को व्यंजित किया है। यद्यपि मनुष्य अपने स्वार्थों के लिए प्रतिशोध, असत्य आदि कुप्रवृतियों को भी जीवन मूल्य मान लेता है, किन्तु ये सब उसके जीवन में स्थायित्व नहीं ला सकते। इसके लिए जीवन में मर्यादा एवं सत्य अपेक्षित है। अश्वत्थामा का चरित्र अमर्यादित व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। ऐसी स्थिति में अमर्यादित चरित्र अनुचित को ही उचित मानता है और अपने स्वार्थों के निर्वाह के लिए मर्यादा का उल्लंघन करता है। यह मर्यादा उल्लंघन केवल महाभारत के युद्ध में ही नहीं आज भी होता है–

'टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है,
पांडव ने कुछ कम, कौरव ने कुछ ज्यादा।'[3]

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–90
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–117
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–11

मर्यादा के साथ सत्य की महत्ता का प्रश्न भी इस कृति में उठाया गया है। सत्य की उपेक्षा व अर्धसत्य के सहारे रक्तपात द्वारा जीता गया युद्ध भी हारने जैसा ही प्रतीत होता है। इस जीवन मूल्य की व्यापकता एवं महत्ता कवि ने युधिष्ठिर के अर्धसत्य भाषण को आधार बनाकर प्रतिपादित की है और संजय के माध्यम से सत्य की महत्ता इस तरह प्रस्तुत की है–

'सत्य कितना कटु हो
कटु से यदि कटुतर हो
कटुतर से कटुतम हो
फिर भी कहूंगा मैं।'[1]

युयुत्सु तो कौरव वंश की अपेक्षा सत्य की व्यापकता को मानता है। आज की भी परिस्थितियाँ इतनी विषम हैं कि व्यक्ति सत्य पर दृढ़ रह कर असफल हो जाता है। इस विडम्बना को भी युयुत्सु के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है–

'मेरा अपराध सिर्फ इतना है,
सत्य पर रहा मैं दृढ़।'[2]

इस प्रकार की पंक्तियाँ पौराणिक धरातल के द्वारा कवि की यथार्थ अभिव्यक्ति की पुष्टि करती हैं।

'अंधायुग' में भारती अस्तित्व बोध से प्रभावित प्रतीत होते हैं। अश्वत्थामा युधिष्ठिर के अर्धसत्य एवं कृष्ण के अन्यायपूर्ण कार्यों के प्रति अपने में विद्यमान मनोग्रन्थि के कारण युद्ध से आत्म संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। उसके उपचेतन में युद्ध की विभीषिका के कारण प्रतिशोधात्मक वृत्ति तीव्र हो उठती है। वह इस मानसिक कुण्ठा से छुटकारा पाने के लिए युद्ध को अनिवार्य समझता है और प्रतिशोध स्वरूप उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र तक छोड़ देता है। यह ब्रह्मास्त्र ही आज के अणु विस्फोट का प्रतीक है। आधुनिक मानव किस तरह अनास्था, कुण्ठा, विघटन व अविश्वास में पल रहा है, यह अंधायुग में अभिव्यक्त हुआ है। प्रहरी के माध्यम से कही गयी ये पंक्तियाँ इन समस्याओं को उजागर करती है–

'अनास्था का साहस का
श्रम का अस्तित्व का
हमारे कुछ अर्थ नहीं था
कुछ भी अर्थ नहीं था।'[3]

आज मानव का अस्तित्व नियति से अधिक है। वह नियति द्वारा संचालित नहीं होता अपितु नियति को बदल देता है–

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–37
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–53
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–15

'नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता, मिटाता है।'[1]

नियति की अपेक्षा मानव की वैचारिक शक्ति प्रमुख है वैचारिक होकर ही वह कर्मरत हो सकता है। वह अपने समय व भाग्य को कर्म के द्वारा बदल सकता है। 'अंधायुग' में संजय ने इसे स्वीकारा है–

'पर मैं तो हूँ निष्क्रिय निरपेक्ष
सत्य
मार नहीं पाता हूँ
कर्म से पृथक
खोता जाता हूँ क्रमशः
अर्थ अपने अस्तित्व का।'[2]

अंधायुग में कवि युग विशेष को चित्रित करना चाहता है। इसीलिए कथा के माध्यम से उसने अनेक आधुनिक समस्याओं और प्रश्नों को उठाया है। कुछ ऐसे प्रश्न और समस्याएँ भी कथा में आ गयी हैं जो आधुनिक बोध को वाणी देती हैं। कवि ने आधुनिक जीवन मूल्यों के विघटन, संक्रमण, क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त विसंगतियों को विविध सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया है। निम्न पंक्तियाँ आधुनिक संवेदना की अभिव्यक्ति हैं–

'यह युग एक अंधा समुद्र है,
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ
और दर्रों से
और गुफाओं से
उमड़ते हुए भयानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं।'[3]

'अंधायुग' का अश्वत्थामा सही अर्थों में आधुनिक मानवता का प्रतीक है। वह त्रास, घुटन, पीड़ा सहन करते हुए असाधारण सा हो गया है। वध उसके लिए मनोग्रन्थि नहीं नीति बन गया है। उसके मानसिक तनाव ने उसे पाशविक बना दिया है। प्रतिहिंसा व प्रतिशोध से वशीभूत होकर उसने मर्यादा, नैतिक मूल्य व सदाचार को भुला दिया है। आज का व्यक्ति भी ठीक ऐसा ही है। वह मानवता को त्याग पशुता की ओर आकर्षित हो रहा है। वह अश्वत्थामा की भांति बाहर से अहं, अमर्यादा, अनीति का समर्थन करता हुआ भीतर से बिलकुल खोखला हो गया है। आज देश इसी संकट से गुजर रहा है, सारा परिवेश दूषित

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–26
2. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–127
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–75

है, तथा भ्रष्टाचार ही नैतिक मूल्य बन चुका है। यही कारण है कि वर्तमान परिवेश से असंतुष्ट मनुष्य हिंसक पशु बनता जा रहा है।

गांधारी के व्यक्तित्व अंकन में कवि के नारी विषयक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति होती है। गांधारी के मातृत्व व पत्नीत्व की मार्मिक अभिव्यक्ति 'अंधायुग' में हुई है। पति का अनुकरण कर दृष्टिसुख से वंचित होते हुए भी वह दूरदर्शिनी एवं रूढ़ियों से मुक्त है। वह बुद्धिप्रधान नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है और इसीलिए कथानक में कई स्थानों पर उसकी हृदय हीनता स्पष्ट होती है।

धृतराष्ट्र की जन्मान्धता भी स्वयं में एक प्रतीक है। वह जगत की यथार्थ स्थिति से कटे हुए हैं, सत्य-असत्य, सुख-दुख का निर्णय करने की उनकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं और उससे बाहर का वह सोच भी नहीं पाते। आज का मनुष्य भी अपने स्वार्थों के आसपास सुख-दुख, सत्य-असत्य ढूंढता है। वह इसे व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिष्ठित करता है, व्यापक स्तर पर नहीं। धृतराष्ट्र की वैयक्तिकता ही आधुनिक मानव की वैयक्ति भावना है।

संजय की अंतर्मुखी प्रवृत्ति और उसका चिंतन आज के व्यक्ति की आत्मकेन्द्रित स्थिति को अभिव्यक्ति देता है। संजय की स्थिति, उसके सोचने-समझने का ढंग ही आज के व्यक्ति का चिन्तन है। आज व्यक्ति यह महसूस करता है कि सामाजिक नैतिक मूल्यों के मानदण्ड बदल गये हैं और प्राचीन सामाजिक मूल्य पिछड़ापन कहे जाने लगे हैं।

प्रहरियों के रूप में आज के जन-साधारण की वीतरागी स्थिति, उसकी राज्य व समाज के प्रति उपेक्षा की भावना भी एक तरह का अंधापन ही है। समाज का सामान्य व्यक्ति परिस्थितियों से जूझने की अपेक्षा तटस्थ रहना पसन्द करता है। जैसा कि प्रहरी का कथन है-

'झुक जाओ ढालो के नीचे,
छिप जाओ,
नरभक्षी हैं
ये गिद्ध भूखे हैं।'[1]

महाभारत के युद्ध का परिणाम भी निराशा, कुण्ठा, पश्चाताप व अकेलेपन के रूप में व्यक्त हुआ है। बिना समझे लड़े गये युद्ध अंततः निराशाजनक व त्रासदायी होते हैं। यहाँ युधिष्ठिर जीत कर भी हारे हुए व निराश हैं। वे ऐसे व्यक्ति की तरह हैं जो आज की इस भौतिक संस्कृति की चहल-पहल, औपचारिकताओं व भीड़ में भी नितान्त अकेला है। उसकी संवेदनाएँ किसी को भी अपना साझीदार नहीं महसूस करतीं। 'महाभारत के युद्ध में मनुष्य मर गये, मनुष्यता नहीं मरी। आज भी मनुष्य मर रहे हैं और मनुष्यता कहीं न कहीं जीवित है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारती ने 'अंधायुग में महाभारत के अठारहवें दिन के बाद की

---

1. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-16

यद्धोत्तर घटनाओं का सहारा लेकर जो कथावृत्त प्रस्तुत किया है वह आधुनिक जीवन के पर्याप्त निकट है।'[1]

'अंधायुग' में आधुनिक युगबोध की सृष्टि में उसका शिल्प विशेष सहायक हुआ है। कवि ने आधुनिक संकट बोध की अभिव्यंजना के लिए पुराणकथा को माध्यम बनाया है। 'पौराणिक कथानक को लेकर अपने युग के प्रति इतना गहरा 'कन्सर्न' किसी अन्य रचना में कठिनाई से मिलेगा।'[2]

अंधायुग की भाषा, मुक्त छन्द का प्रयोग और प्रतीकों का उल्लेख भी इस कृति की आधुनिकता स्पष्ट करता है। कृति की भाषा कहीं भी औपचारिक नहीं है। पात्रों की मानसिक अवस्था अथवा उनके विचारों के परिवर्तन के साथ टोन भी बदल जाता है। शब्द प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किये गये हैं। अनावश्यक शब्दों से बचा गया है। विचारों की गहनता के कारण कहीं-कहीं भाषा अति गद्यमय हो गयी है। यह गद्यमयता पात्रों की अतिशय वैचारिकता के कारण है। सूक्तियों का भी बहुत सुन्दर संयोजन किया गया है। ये सूक्तियाँ प्रभावोत्पादन में सक्षम सिद्ध हुई हैं। इनके द्वारा पात्रों की वैचारिकता का आभास मिलता है।

'जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।'[3]

एवं इसी प्रकार-

'हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है।'[4]

इस दृश्यकाव्य में अलंकारों का प्रयोग भी सार्थक हुआ है। उपमा और रूपक के अनेक प्रयोग हुए हैं। कुछ उपमाएं तो एकदम नयी व अनूठी हैं-

'कौरवों की वधुएं
सुरभित पवन तरंगों सी।'[5]

---

1. महावीर सिंह चौहान, 'नयी किवता की प्रबन्ध चेतना' (स) पृष्ठ-38
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'हिन्दी नव लेखन'-पृष्ठ-85
3. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-26
4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-26
5. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ-26

एक अन्य प्रयोग–

'तोड़ी हुई मर्यादा,
कुचले हुए अजगर सी
गुंजलिका से कौरव वंश को लपेटकर
सूखी लकड़ी सा तोड़ डालेगी।"[4]

कृति में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। दृश्यकाव्य का मंगलाचरण तो संस्कृत भाषा से ही है। उर्दू के शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं। भाषा प्रतीकात्मक अधिक है। कृति का नाम भी प्रतीकात्मक है। 'अंधायुग अतीत के पृष्ठ पर वर्तमान का लेख है। पौराणिक कथानक से युक्त होकर भी वर्तमान जीवन के समसामयिक प्रश्नों व समस्याओं की अनुगूँज से युक्त है।"

अंधायुग का नवीन भावबोध की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। कवि ने युगीन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा कर भावी पीढ़ी का मार्ग निर्देशन किया है। अंधायुग की गणना उन अत्यन्त विरल और सशक्त कृतियों में की जा सकती है। जिनकी शक्ति और संवेदना एक ऐसे संपृक्त रूप में उभरती है, जहाँ भावपक्ष और कलापक्ष जैसे विभाजन कृत्रिम लगते हैं।

ooo

---

4. धर्मवीर भारती, 'अंधायुग' पृष्ठ–26

आलेख

रेगिस्तानी दुबाई में हिन्दी की फुहार

❑ डॉ. बीना बुदकी

दुबाई का नाम आते ही रेगिस्तान की छाया उभरने लगती है, लेकिन अक्टूबर 1998 में जब स्वयं वहाँ हिन्दी शिक्षिका के रूप में गई, तो वहाँ देखकर ऐसा लगा रेगिस्तान कम हरियाली का विशाल साम्राज्य है। उसी प्रकार तब तक मैं हमेशा सोचती थी कि दुबाई में सिर्फ अरबी भाषा का बोलबाला होगा और अरबी के पश्चात् रोजी-रोटी कमाने की भाषा अंग्रेजी होगी। लेकिन वहाँ जाकर ये सभी भ्रम धीरे-धीरे खत्म हो गए।

दुबाई तथा गल्फ के अन्य देशों के साथ भारत का रिश्ता हमेशा से रहा है। वहाँ के कई अरबी हैदराबाद जाकर दुल्हन ढूँढ़कर ले जाते और उसके नाम के साथ हिन्दी लगा देते, यानि ये हिन्दुस्तान से आई है। हैदराबाद की कई लड़कियाँ वहाँ के लोगों से निकाह करके रह रही हैं। बल्कि यूँ कहना होगा कि एक युवती बूढ़ी होने से पहले ही अपनी बहन या किसी युवती को अपनी सौत बनाकर ले आती। इस तरह बरसों पहले से यह चलन होने के कारण हिन्दी वहाँ बोलचाल की भाषा अरब घरानों में रहती, हिन्दी मल्लिकाओं ने संजोकर रखा।

दुबाई सबसे पहले व्यापार करने गुजराती और सिन्धी जाति के लोग गए। इनमें सबसे पहला गुजराती परिवार भाटिया परिवार है। जिनके परिवार में अजेय भाटिया और मनीष भाटिया आज भी वहाँ का सम्मानित परिवार है। बोलचाल की भाषा हिन्दी थी। धीरे-धीरे भाटिया परिवार के योगदान से शिवमन्दिर, गुरुद्वारा तथा कृष्ण मन्दिर की स्थापना हुई। इन सब पवित्र स्थलों में ज़्यादा भीड़ शुक्रवार के दिन आती थी। जहाँ सभी एक-दूसरे से मिलकर अपने भारतीय होने का परिचय देते थे और हिन्दी भाषा बोलकर मन को हल्का कर लेते थे। दुबाई में छुट्टी का दिन शुक्रवार का दिन होता है।

सभी कार्यालयों में अरबी तथा अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता है। कार्यालय में हिन्दी कोई नहीं बोलता है ना ही कोई कामकाज हिन्दी में होता है। सभी दुकानें, कार्यालयों के बोर्ड अरबी भाषा या फिर अंग्रेजी में है। हिन्दी का लिखित रूप दूर-दूर तक देखने को नहीं मिलता था।

** एस. जी. इम्प्रैशन, ए-102, सैक्टर-4-बी, मेबाड़ कालेज के पास, वसुन्धरा, गाजियाबाद-201012*
e-mail : beenadeepakbudki@gmail.com, Mob : 9953390488

गुजराती, सिन्धी के अतिरिक्त केरल के 'मलबारी' भी वहाँ कुकुरमुत्ते की तरह हैं। यदि किसी भी परिवार से एक मलबारी आ जाता तो वह धीरे-धीरे अपने प्रान्त से सबको लाने की कोशिश करता। हिन्दी बोलना लिखना-इससे इनका दूर दूर तक कोई रिश्ता नहीं पर हिन्दी वह सीखते और बोलते हैं पर उतना ही जितना उनकी जरूरत है।

कुछ समय पश्चात् डॉ. मोती प्रकाश ने 'इण्डियन स्कूल' में अध्यक्ष-प्राचार्य के रूप में कार्यभार सम्भाला तथा श्री सन्नी वर्की ने ''अवर ओन इग्लिश स्कूल'' की स्थापना की। शिक्षा के विकास हेतु दोनों महारथियों ने बागडोर सम्भाली और एक कमरे से स्कूल शुरू कर एक वट वृक्ष की भांति विशाल स्कूल की स्थानपा की तथा कई ब्राँच स्कूलों को भी खोला।

हिन्दी का सर्वप्रथम लिखित रूप इन दो स्कूलों में विकसित हुआ। यद्यपि अरबी भाषा का सातवीं तक पढ़ना अनिवार्य था। लेकिन हिन्दी को भी अनिवार्य कर दिया। पहले पहल इन्हीं दो स्कूलों में हिन्दी भाषा की पढ़ाई शुरू की गई। भाषा का लिखित रूप आने पर अब इन दो स्कूलों में हिन्दी निबन्ध तथा वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी संचालित की जाती थी। अन्य स्कूलों से बच्चों को बुलाकर ये प्रतियोगिताएँ करवायी जाती थी। वक्त बदला और बदलते समय के साथ हिन्दी का प्रचार-प्रसार का रूप भी बदला।

पिछले 15 सालों से दुबाई शॉपिंग फेस्टीवल में 'इण्डियन पेवीलियन' में भारतीय नृत्य और नाटक की शुरूआत भी की गई। भारत से कई दिग्गज कलाकारों को बुलाकर वह अपनी गायकी तथा नृत्य की झंकार से इण्डियन पेविलियन में बैठे हजारों अरबी तथा अन्य लोगों के पैरों में बेड़ियां डाल देते हैं। हिन्दी गीत, नृत्य के कई शौकीन अरबी घन्टों पहले आकर सीट पर बैठकर हिन्दी कार्यक्रमों का इन्तजार करते हैं।

इण्डियन स्कूल में दुबाई का सबसे बड़ा और सुसज्जित तथा आकर्षक हाल है, जहां भारत से आए फनकारों को सम्मान हेतु बुलाया जाता है। इसी हाल में वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी करायी जाती हैं। इन दो स्कूलों के काफी बाद अन्य कुछ स्कूलों की स्थापना भी हुई। जिसमें डी. पी. एस. तथा अवर ओन इंग्लिश स्कूल की कई शाखाएँ खोली गईं। जहाँ हिन्दी को विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था, जिसके लिए कई शिक्षिकाएँ भी हिन्दी पढ़ाने के लिए रखी गयी।

पिछले 15 सालों में दुबाई दिन-ब-दिन तरक्की की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा था। यहाँ हिन्दी की पहली पत्रिका 'सरिता, गृहशोभा' दिल्ली प्रेस वालों की आई अन्यथा अंग्रेजी और अरबी किताबों का ही बोलबाला था। वहाँ के पुस्तकालयों में भी अब हिन्दी की किताबें दिखाई देती हैं।

दुबाई जहाँ इलैक्ट्रोनिक उपकरणों की मण्डी है और सैर सपाटे के लिए भी आकर्षक स्थान है। समुद्र के बीच में, बुर्ज अरब होटल और दुनिया की सबसे ऊँची इमारत बुर्ज खलीफा देखने योग्य है। वहाँ 75 देशों से आए नागरिक एक साथ उस देश में रहते हैं। सबको अपने अपने कार्य करने की छूट है। अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति को मानने की स्वतन्त्रता है।

दुबाई शहर में 75 देशों से आए अनेक युवक तथा युवतियाँ हैं लगभग तीन या चार साल तक किसी एक देश के लोगों का आवागमन ज्यादा रहता है। उनकी सत्ता सर्वोपरि रहती है। कभी फ्रांस, ईरान, इजिप्ट, उजबेगिस्तान, किसी भी एक देश के लोगों की संख्या ज्यादा होती है। आजकल फिलिपिन तथा चाईनीज काफी छाए हैं। रोजी रोटी की तलाश में आए अनगिनत युवा तथा युवतियाँ आती हैं। दुबाई में 'अलबरहा' 'उेरा' शहर के पुराने इलाके हैं। जहाँ मध्यमवर्गीय आय के लोगों का रैन बसेरा है। 1992 में अलबरहा इलाके में रहती 'मीना कावड़े' ने हिन्दी पढ़ाने का कार्य शुरू किया। अनेक देशों से आई युवतियाँ विशेषकर मीना जी की छात्र थी। ये महिलाएँ अंग्रेजी के आधार पर ही हिन्दी को सीखती ताकि अपने पद और व्यवसाय अनुसार वह हिन्दी, अंग्रेजी, अरबी कई भाषाएँ बोलकर व्यवसाय में तरक्की हासिल कर सकें, क्योंकि दुबाई में भारतीयों की संख्या भी बुहतायत में है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि कई भारतीय अपनी भाषा को ना बोलकर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग ज्यादा करते हैं। जबकि विभिन्न देशों से आए अनेक युवक तथा युवतियाँ कड़ी मेहनत करके हिन्दी बोलने का प्रयास करते हैं। श्रीमती मीना जी ने एक पुस्तक भी तैयार की 1992 में ''आओ हिन्दी सीखें'' जिसमें हिन्दी अंग्रेजी तथा अरबी में वाक्य लिखे हुए हैं। इस पुस्तक में डाकखाने, हस्पताल, बाजार, पड़ोसी सब्जियों के नाम रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े वाक्यों को लिखा गया है। उन्हीं वाक्यों को अंग्रेजी तथा अरबी में भी लिखा गया है।

इसी प्रकार 'अल गिसेस' में श्रीमती रूपा रानी ने बहुत से युवकों को हिन्दी सिखाने का कार्य 1994 से प्रारम्भ किया। यह युवक ज्यादातर ड्राईवर या फिर ऐसे पेशे जैसे कपड़ा बेचने वाले या फिर और कोई सौदा बेचने वाले तबके के युवक थे। जो स्वयं सीरियन, लेबनान, ईजिप्ट, उजबेगिस्तान आदि देशों से रोजी रोटी की तलाश में दुबाई आए। दुबाई में यूँ तो काफी आबादी भारतीयों की है। मौखिक पढ़ाई के साथ-साथ लेखन करके भाषा का प्रयोग सिखाया जाता था। यहाँ भी हिन्दी भाषा अंग्रेजी के आधार पर पढ़ाई जाती थी।

1996 के बाद धीरे-धीरे कुछ पत्रिकाओं का भी प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यहाँ पत्रिकाओं को चलाने के लिए कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था। हिन्दी की टाईपिंग करने वालों का यहाँ अभाव है। बहुत तलाशने के बाद भी यहाँ हिन्दी टाईप करने वाला कोई नहीं मिलता। भारत से ही कुछ लोगों ने सॉफ्टवेयर (हिन्दी का) लाकर स्वयं कार्य करना शुरू किया। इस

प्रकार अर्द्धवार्षिक दो पत्रिकाएं 'प्रवासी' और 'सन्देश' ओपन स्कूल के प्रचार्य आर. गुप्ता जी के मार्ग दर्शन में निकाली गई। इण्डियन एसोसियेशन में सभी पर्व हिन्दी भाषा में बोलकर तथा परम्परा अनुसार मनाए जाते। पहले-पहल वहां अंग्रेजी में लिखे सन्देश तथा सांस्कृतिक गतिविधि को लिखा जाता था। लेकिन भारतीय भाषा की कुछ महान महिलाओं जिसमें राम बक्सानी, मोती प्रकाश, अजेय भाटिया की माता जी, संगीता आदि के सहयोग तथा प्रोत्साहन के फलस्वरूप यह सन्देश पत्र हिन्दी में ही प्रकाशित करके प्रसारित होने लगे।

श्रीमती कृष्णा दुरानी तथा शीबा ने भारतीयता नामक 24 पृष्ठ की पत्रिका की शुरूआत 1991 में की। जिसमें 3-3 माह के सभी पर्व तथा उनसे सम्बन्धित सूचना तथा लेख छपे होते थे। हिन्दी बोलने वाले क्षेत्र 'बरदुबाई' में यह प्रिय पत्रिका थी। इसमें भारत के सभी पर्वों का विवरण होता था बल्कि सिन्धी लोगों के पर्वों की सूचना भी दी जाती थी। समय-समय पर भारत की भारतीयता से भी इस पत्रिका के द्वारा भारतीयों को एक सूत्र में पिरोने की कोशिस की जाती थी।

1990 में हिन्दी दिवस को भी इण्डियन स्कूल, भारतीय दूतावास तथा अवर ओन इंग्लिश स्कूल में मनाया जाने लगा उस सप्ताह हिन्दी के कई कार्यक्रम तथा निबन्ध प्रतियोगिताएँ भी कराई जाती हैं। शिक्षक दिवस के दिन भी इण्डियन स्कूल में पूर्णतया हिन्दी माहौल में बच्चे स्कूल चलाते। पूरे दिन कोई भी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग नहीं करता।

भाटिया परिवार यद्यपि स्वयं गुजराती भाषा से सम्बन्धित है और घर में गुजराती तथा हिन्दी ही बोलते हैं। परिवार के बच्चे अंग्रेजी स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ाई करते हैं। लेकिन श्री अजेय भाटिया ने अपनी एक बेटी तथा बेटे को मेरे द्वारा हिन्दी पढ़ाने का कार्य सौंपा। मनीष भाटिया ने भी अपने बेटे को हिन्दी पढ़ाने के लिए मुझे नियुक्त किया। हालांकि इन बच्चों का हिन्दी बोलने या लिखने से दूर-दूर तक कोई काम नहीं। लेकिन भारतीयता से प्रेम के कारण लगभग 4 वर्ष तक मैंने इन बच्चों को हिन्दी पढ़ाई। शुरूआत अंग्रेजी के आधार पर ही करायी लेकिन धीरे-धीरे अक्षर ज्ञान इन बच्चों को हो गया। मुझे आज भी याद है जब अजेय भाटिया ने मेरा धन्यवाद करते हुए कहा, ''कि मुझे खुशी है कि मेरे अंग्रेज़ी कबूतरों को हिन्दी बोलना आ गया। अब तो ये खाने की मेज पर जब सब्जियों के नाम हिन्दी में कहते हैं मेरा सिर गर्व से ऊँचा हो जाता है।'' इस परिवार की बहुओं को मैंने 'गीता' तथा 'दुर्गासप्तशती' आदि भी पढ़ाना सिखाया है। ऐसे ही कुछ पुराने परिवार जो रोज़ी कमाने आए थे और यहीं बस गए वह किसी भी कीमत पर अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाना लिखाना चाहते हैं। अजेय भाटिया प्रतिवर्ष 'इण्डियन स्कूल' के अर्द्धवार्षिक प्रश्नपत्र को घर में लाकर अनुशासन के तहत परीक्षा की तरह अपने बच्चों से यह प्रश्न पत्र करवाते और किसी विशेष हिन्दी जानकार से प्रश्न पत्र जाँच करवाते। हिन्दी के प्रति उनका ये प्रेम अकथनीय है।

पिछले 10 वर्षों से श्रीमती पूर्णिमा वर्मन ने इन्टरनेट के द्वारा 'अभिव्यक्ति' पत्रिका कार्य शुरू किया है। 'शारजा' में रहती इस महिला ने शुरू में हिन्दी का टाईप भी स्वयं किया। रात दिन विश्व के हिन्दी साहित्यकारों को अपनी इस पत्रिका से जोड़ा, सात इमारत (दुबाई, शारजा, अबूदाबी, एलाइन, फुजेरा, उमलक्कीन रसलखेमा) में हिन्दी विदूषियों और हिन्दी प्रेमियों को ढूंढ निकाला। आज ये पत्रिका देश विदेश के अनेक साहित्यकारों, कवियों से भरी हुई है। अकेली पूर्णिमा जी काफी समय से पत्रिका का संचालन कर रही थी। अब हिन्दी टाईप के लिए उन्होंने किसी को रख लिया है, फिर भी अधिकांश कार्य वह पारिवारिक दायित्व के साथ स्वयं सम्भालती है।

श्री सन्नी वर्की भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी भरपूर कोशिश करते रहते हैं। नवरात्रों में डाँडिया की धुन पर थिरकते जोड़े और नवरात्र में माँ की भेटें व्यवसायी अपने पैसों से भारत से छपवा कर लोगों में मुफ्त बाँट देते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो मौखिक तो बहुत समय से ही बोली जाती है लेकिन अब दिनों दिन लिखित रूप में भी हिन्दी अपने पैर जमा रही है।

○

आलेख

डोगरी कविता में ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

❑ वेदकुमारी घई

किसी भी भाषा में अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग उस भाषा की सहज सरलता और भावों को अभिव्यक्त करने की अनुपम क्षमता को प्रकट करता है। शब्द अर्थों के वाहक होते हैं पर भाषा विज्ञान के अनुसार शब्दों का अर्थों के साथ सम्बन्ध यादृच्छिक होता है। किसी पशु विशेष को घोड़ा कहा जाए या अश्व यह उन शब्दों का प्रयोग करने वाले समाज की इच्छा पर ही निर्भर होता है। अश्व, घोड़ा आदि शब्दों की ध्वनियों का उस पशु की आकृति तथा क्रियाकलाप के साथ कोई नियत सम्बन्ध नहीं है परन्तु अनुरणनात्मक शब्दों की ध्वनियां ही उन शब्दों के अर्थ को यत्किंचित् प्रकट करने में समर्थ होती हैं। ऐसे शब्द ही वस्तुतः ध्वनिप्रतीक या ध्वन्यात्मक शब्दचित्र कहे जा सकते हैं। इन शब्दों के भाव को समझने में श्रोता को अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता। ये शब्द श्रवणमात्र से स्वतः श्रोता के हृदय को छूकर वहां निज अर्थ को अंकित कर देते हैं।

शब्द ध्वनियों से बनते हैं और ध्वनियां श्रव्यता की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ ध्वनियां सुनने में कोमल होती हैं, कुछ कठोर, कुछ ध्वनियां कानों को भारी लगती हैं कुछ हल्की-फुल्की। कुछ तीव्र होती हैं कुछ मन्द। यदि कोमल अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कोमल ध्वनियों से बने शब्द का प्रयोग किया जाता है तो उस शब्द की अभिव्यञ्जना शक्ति दुगुणी हो जाती है। इस प्रकार कठोर भाव की अभिव्यक्ति के लिए कठोर ध्वनियों से निर्मित शब्द का प्रयोग उस भाव को श्रोता तक पहुंचाने में विशेष सहायक होता है। संस्कृत के प्राचीन साहित्य शास्त्रियों ने इस क्षेत्र में अनुसंधान कर के माधुर्य, ओज, प्रसाद इन तीन गुणों की कल्पना की है। दण्डी ने इन गुणों की संख्या दस बताई है, वामन ने बीस तथा भोज ने बहत्तर गुणों का वर्णन किया है। गुणों में प्रधानतम प्रसाद गुण की व्याख्या करते हुए मम्मट ने कहा है-

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः।

जिसके सुनने मात्र से शब्द के अर्थ की प्रतीति हो जाए, सभी रसों में रहने वाला ऐसा गुण प्रसाद गुण कहलाता है।

माधुर्य गुण के व्यञ्जक ये वर्ण बताए गये हैं-देवनागरी वर्णमाला के टवर्ग को छोड़ कर

शेष स्पर्श व्यञ्जन जो अपने वर्ग के अन्त्य वर्ण ङ ञ न म से मिले हों तथा ह्रस्व स्वर रेफ तथा नकार।

ओज गुण को प्रकट करने वाले वर्ण हैं– वर्गों के दूसरे वर्णों ख छ ठ थ फ से युक्त हुए वर्गों के प्रथम वर्ण क्रमशः क च ट प त तथा वर्गों के तृतीय वर्ण ग ज ड द ब, टवर्ग तथा श ष वर्ण।

अनुरणनात्मक शब्दों में एक ओर तो समुचित ध्वनियों के प्रयोग से भाव की कोमलता, कठोरता आदि की अभिव्यक्ति होती है, दूसरी ओर उन ध्वनियों की द्विरुक्ति आदि से अनुभूतियों की तीव्रता, निरन्तरता, गहराई आदि को प्रकट किया जाता है। संस्कृत भाषा में भी निरन्तरता की अभिव्यक्ति द्विरुक्ति द्वारा की जाती है। पठ् धातु बने यङन्त रूप पापठ्यते का अर्थ है बार बार पढ़ता है, तथा रुद् धातु से बने रूप रोरुद्यते का अर्थ है निरन्तर रोता जाता है। शिशु की सहज सरलता सी यह अकृत्रिमता जन भाषाओं की बहुमूल्य सम्पति है। नदी के पानी के बहने की ध्वनि को हिन्दी में कल-कल से तथा तमिल में चल-चल से प्रकट किया जाता है। दरवाजे की आवाज को हिन्दी में खट् खट् तथा तमिल में कट् कट् कहते हैं। घण्टी बजने की ध्वनि हिन्दी में टन टन से, तमिल में डन डन से अभिव्यक्त होती है। ढोल बजने की अभिव्यक्ति हिन्दी तमिल पंजाबी डोगरी सभी में डम डम द्वारा होती है। डोगरी भाषा में भी ऐसे अनुरणनात्मक शब्दों तथा ध्वन्यात्मक शब्द चित्रों का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। डोगरी भाषा के शब्दों में द्विरुक्ति कई प्रकार के अर्थों की द्योतक है। में जागतै गी पुच्छेआ ते फट बोलन लगी पेआ में फट द्वारा वक्ता की उक्ति पूरी होने से भी पूर्व श्रोता का बोल पड़ना प्रकट होता है। फट्टक शब्द से यह भाव और तीव्रता की अभिव्यक्ति करता है। इक गल्ल पुच्छी ते **फटफट** बोलदा गेआ' में **फट फट** बोलने की निरन्तरता को प्रकट करता है। 'गल्ल पुच्छो ते फटाफट जवाब दिन्दा ऐ में **फटाफट** के प्रयोग से क्रिया की तीव्रता प्रकट होती है। सामान्य बोलचाल की डोगरी में तो ये अनुरणनात्मक शब्द मिलते ही हैं, डोगरी कविता में भी इन का प्रयोग काव्य की सहज स्वाभाविकता तथा प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने में पर्याप्त सहायक होता है। कहीं दिरुक्ति मात्र से, कहीं विशेष भाव की प्रतिध्वनि करती हुई ध्वनियों के प्रयोग से तो कहीं विशेष ध्वनिक्रम के प्रयोग से इन ध्वन्यात्मक शब्दचित्रों का सृजन होता है। कुछ ध्वनियां गति को प्रकट करती हैं, कुछ स्थिरता को, कुछ प्रकाश की प्रतीति कराती हैं, कुछ कोमलता की द्योतक होती हैं, कुछ कठोरता की।

गतिद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

डोगरी कविता में पहाड़ी झरनों के बहाव के लिए **झर झर** या **छर छर** का प्रयोग मिलता है–

ऊआं झरने झर झर झरदे
इक बूंदै गी तरसै पंछी। **पृ. 64**

नाड़ू छर छर करदे चलदे। वही पृ. 40
छर छरान्दे नाड़ू जे बगदे। वही पृ. 79

नदी के बहाव के लिए झर झर का प्रयोग नहीं मिलता छर छर का मिलता है

छर छर छर छर सरवरी बगदी। कूंज कतारां पृ. 111

वायु की गति को **फर फर** से प्रकट किया गया है।

फर फर बा फरनाटड़े मारदी
इक बूंदै गी तरसे पंछी। पृ. 40
फर फर झुल्लदी बा पुरै दी। वही पृ. 88
भंवरे की उड़ान भी फर फर से व्यक्त की गई है–

फर फर करदा उड्डरी जन्दा
फर फर भौन्दा भौन्दा। वही पृ. 46

कोहलू गी गति को **चुर मुर चुर मुर** से प्रकट किया गया है।

चुर मुर चुर मुर कोहलू चलदा। मधुकण पृ. 22

मनुष्य की सामान्य गति के लिए डोगरी में टुर क्रिया का प्रयोग होता है। इस क्रिया की द्विरुक्ति गति की निरन्तरता को प्रकट करती है।

टुरी टुरी पैरें छाले पेई गे
इक बूंदै गी तरसे पंछी। पृ. 76

गति की निरन्तरता और निरर्थकता की सांझी अभिव्यक्ति **लूर लूर** से हुई है

फिर सारे लूर लूर ओ सपाइया । वही पृ. 76.
जिन्दड़ी भर रेह् अस लूर लूर। अस ते आं बनजारे।

शरीर के कम्पन की अभिव्यक्ति प्राय: **थर थर** से होती है

कम्बे थर थर मेरी काया
इक बूंदे गी तरसै पंछी। पृ. 70

थर थर कम्बदी काया
डोला कुन्न ठप्पेया। पृ. 21

परन्तु सर्दी में होने वाला कम्पन जिस में मनुष्य कांपता तो है ही पर साथ साथ शरीर को सिकोड़ता भी जाता है **ठुर ठुर** से प्रकट किया जाता है

ठुर ठुर करदा ठरै बढ़ेपा। वही पृ. 20

यहां ठ ध्वनि के साथ संवृत्त वृत्ताकार उ का प्रयोग जिस में ओंठ भी संकुचित होते हैं बड़ा जचता है।

दीपक की बाती का हिलना **थरक फरक** से बताया गया है-

थरकदी फरकदी जोत बलदी रेई
कूंज कतारां **पृ. 127**

इन सब गति द्योतक शब्दों में 'र' ध्वनि की प्रधानता है। 'र' कम्पनयुक्त ध्वनि है जिस में जिह्वा कांपती है अत: इस ध्वनि से युक्त शब्दों का गति के लिए प्रयोग सहज स्वाभाविक लगता है। संस्कृत भाषा में भी गतिद्योतक शब्दों में प्राय: र का प्रयोग है जैसे चरति, सरति, तरति, क्रमति, भ्रमति आदि में।

ध्वनिद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

किसी वस्तु अथवा जीव से उत्पन्न ध्वनि के अनुकरण पर बने शब्द इस वर्ग में आते हैं तथा उन का भाव तुरन्त स्पष्ट होता है। भंवरा **भूं भूं** करता है, पपीहा **पी पी** कहता है। कुछ अन्य पक्षी **चूं चूं, चिड़ चिड़** करते हैं। काली कोयल **कूह कूह** करती है।

भूं भूं करदा गुन गुन गान्दा
इक बूंदै गी तरसै पंछी। **पृ. 46**
पी पी करै पपीहा। वही **पृ. 83**
चूं चूं चिड़ चिड़ करदे रौंहदे
डोला कुन्न ठप्पेया। **पृ. 13**

कालिये कोयलिये **कूह् कूह्** करियै निं बोल डुग्गर धरती । **पृ. 3**

जलप्रवाह की ध्वनि यदि मधुर और कोमल है तो उसे **कल कल** या **छै छै** से प्रकट किया जाता है पर यदि वह ध्वनि कठोर और जोश भरी है तो सां सां का प्रयोग मिलता है।

कल कल करदे या **छै छै** बगदे
डोला कुन्न ठप्पेया। **पृ. 88**
सां सां करदा झग्गां छोड़ी
कोल बगा दा नाला। वही **पृ. 16**

आंधी की कठोर ध्वनि भी **सां सां** से अभिव्यक्त हुई है।

सां सां करदा झक्खड़ झुल्लै
मेरी कविता मेरे गीत। **पृ. 92**

बादल की गरज **घनन घनन** से तथा मन्द मन्द बरसते बादल की ध्वनि **रिमझिम** से व्यक्त की जाती है।

गरजन तरजन घनन घनन घन
इक बूंदै गी तरसै पंछी। **पृ. 84**

रिमझिम रिमझिम बद्दल बरदा। वही **पृ. 75**

नयनों से बहता अश्रुजल **छम छम** ध्वनि करता है

छम छम रौन्दे नैन गोरी दे। वही **पृ. 75**

बिजली की ध्वनि **कड़ कड़** से व्यक्त की गई है–

कड़ कड़ बिजली ऊआं कड़कै। वही **पृ. 64**

द्वार की सांकल तथा पीतल के बरतन आदि से उत्पन्न ध्वनि **खड़कना** से छैनों से उत्पन्न ध्वनि **छनकना** से तथा घड़यालों-कंगरेलों की ध्वनि **ठनकना** से प्रकट की गई है

छैने छनकाए दे जां घड़याल ठनकाए दे
सुरग निं जान हुन्दा पित्तल खड़काए दे।

वही **पृ. 26**

जजरी जजरी टोरा टुरदा गल ठनकै कंगरेल ।

मधुकण **पृ. 22**

जलती लकड़ी या अङ्गारे दी ध्वनि **तिड़कना** है

भड़के मके, फी तिड़कियै ङारे वने सुआह

गमले दे कैकटस। **पृ. 30**

दान्तों के परस्पर बजने को **किट किट** से व्यक्त किया है

किट किट करियै दन्द करीचन

डोला कुन ठप्पेआ। **पृ. 17**

दृश्यद्योतक ध्वन्यात्मक शब्दचित्र

इस प्रकार के शब्द प्रकाश चमक आदि की अनुभूति कराते हैं। इन में ल ध्वनि की प्रधानता है। संस्कृत के आलोक, ज्वाला, लालित्य, लावण्य शब्द भी ल ध्वनि का सम्बन्ध प्रकाश के साथ प्रकट करते हैं।

डोगरी भाषा में कम्पन युक्त प्रकाश को झिलमिल शब्द चित्र प्रकट करता है जैसे चन्द्र की चांदनी के विषय में कवि कहता है

कदें ते **झिलमिल** चिटक चान्दनी

इक बूंदै गी तरसै पंछी। **पृ. 64**

निरन्तर जलने वाला सशक्त प्रकाश **लट् लट्** से व्यक्त होता है। यह भीतर आत्मा का प्रकाश है जो नयनों से अभिव्यक्त होता है

आसा जोत जगे मन अन्दर

लट लट रूप सजाई। जोत **पृ० 69**

लट लट करदे डेले बलदे

डोला कुन्न ठप्पेया। **पृ. 16**

लपटों वाला प्रकाश **लप लप** से प्रकट होता है।

बेशक बलन चियाली लप लप ।

जोत **पृ. 45**

तारों की चमक इस प्रकार वर्णित है–

लिश्कन लुश्कन चमकन चुमकन

इक बूंदै गी तरसै पंछी **पृ. 95**

जो दीप बुझने को है उस का जलना लट लट से नहीं **टिम टिम** से व्यक्त होता है।

टिम टिम दीये बलदे।

जोत **पृ. 69**

इन थोड़े से शब्दों का अध्ययन डोगरी भाषा की अर्थाभिव्यक्ति की सहज शक्ति की ओर संकेत मात्र करता है। भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान की दृष्टि से इस दिशा में आगे और शोध कार्य करके विभिन्न भावस्थितियों में प्रयुक्त हुई डोगरी भाषा की शैली के मानदण्डों का निर्धारण किया जा सकेगा ऐसी सम्भावना है।

ooo

लेख

सूना पिंजरा– इस सदी का कड़वा सच

❑ जसविंदर शर्मा

दुनिया के सभी देशों में बूढ़ों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। अब तक तो यह समझा जा रहा था कि बढ़ती हुई बुर्जुग पीढ़ी सिर्फ विकसित देशों की समस्या है मगर विकासशील देशों में भी अब बुजुर्गो की जनसंख्या खतरे के निशान को पार करती जा रही है। उत्पादन करने वालों की अपेक्षा उत्पादन न करने वालों की संख्या में यह बेतहाशा बढ़ोतरी आर्थिक समस्याएं तो पैदा कर ही रही है इसके साथ सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक समस्याएं भी बढ़ रही हैं। यह एक ज्वलंत प्रश्न है कि इस बढ़ती हुई विशाल बूढ़ी फौज की समाज कैसे देखभाल करेगा और इन्हें कौन सहारा देगा ?

भोजन और आश्रय के अतिरिक्त इन बूढ़ों को दवा, देखभाल, अपनापन और रिश्तों की गरमाहट चाहिए। उन्हें छोटे बच्चों-सा भरपूर प्यार और ध्यान चाहिए। ये बूढ़े बात-बात पर रूठते है, जिद करते हैं, भूल जाते है, गुस्सा करते हैं, डांटते हैं, अपने जीवन के अनुभव कहते हैं तथा एक ही बात को कई बार दोहराते हैं। वे गूंगे हो कर तो बैठेंगे नहीं, कुछ न कुछ बातचीत करेंगे, अपना पक्ष रखेंगे और सबके सामने आना चाहेंगे। उन्हें खुलकर जीने के लिए अपना निजी स्पेस भी चाहिए।

गांवों में सीनियर लोगों की हालत कुछ ठीक हैं मगर वहां चिकित्सा का ढांचा खुद रुग्ण है। शहर में बुर्जुग लोगों की समस्याएं ज्यादा गंभीर होती जा रही हैं। यहां सामुदायिक गतिविधियां बहुत ही कम हैं जो उन्हें पूरी तरह व्यस्त रख सकें। यहां पड़ोस, मुहल्लादारी और रिश्तेदारी में दिखावे की औपचारिकताएं ज्यादा हैं और अपनापन नहीं के बराबर है। कुनबे का नेटवर्क भी यहां कम ही काम करता है।

शहर में बुर्जुग सर्वथा एकाकी और कुंठाग्रस्त हैं। यहां परिवार निहायत छोटे, एकल और नाटकीय हो गए हैं जिनकी योजना में सीनियर सदस्य को शामिल करने का कोई प्रावधान ही नहीं रह गया है। घर के सारे लोग बाहर जाने लगे हैं। घर की स्त्री जॉब करती है उसके काम के घंटे निश्चित हैं। उस पर कई दबाव है। बच्चों पर पढ़ाईयों और प्रतियोगी परीक्षाओं

** 5/2 डी रेल विहार मंसा देवी पंचकुला–134109 हरियाणा फोन 098724-30707*

E-mail- Jasvindersharma52@yahoo.com

का जोर है जिस कारण घर में कोई नहीं है जो बूढ़ों से बतिया सके या देखभाल कर सके। आदमी लोग शहरी संस्कृति की चूहादौड़ में फंसे भागमभाग में हैं।

60 साल की उम्र पार करने वाले भारत में तकरीबन 7 करोड़ लोग हैं जिनमें तीन करोड़ के लगभग 70 साल से ज्यादा हैं। ये सात करोड़ सहारा खोजते बुर्जुग कोई कम आबादी नहीं है। वृद्ध बढ़ते रहे हैं और उन्हें सम्भालने वाले युवा लोग कम होते जा रहे हैं। जो हैं भी वे अच्छी व मोटी कमाई वाली नौकरियों के पीछे महानगरों या विदेशों में जाने की लालसा में बिस्तर बांधकर तैयार बैठे हैं।

इससे समाज में असंतोष, दुख और संताप में अप्रत्याशित वृद्धि होती है। साथ में सरकारी संसाधनों पर भी बोझ बढ़ता है। आज हर राज्य सरकार को अपनी बूढ़ी आबादी के लिए पेंशन और सस्ती स्वास्थ्य योजनाएं शुरू करनी पड़ रही हैं। कारण साफ है आज की राजनीति में इस बूढ़ी, अशक्त और आर्थिक रूप से कमज़ोर होती जा रही जमात की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आज स्थितियां बहुत दुरूह हो गई हैं। मां-बाप अपना पेट काट-काटकर अपनी हैसियत से बढ़कर अपने बच्चों को अच्छे संस्थानों में पढ़ाते हैं और अच्छी पोजिशन मिल जाने के बाद बच्चे उनसे विमुख हो जाते हैं। संयुक्त परिवारों का तिलिस्म टूट चुका है। एकल परिवारों के बच्चे सुनहरे भविष्य की तलाश में सारी दुनिया के चक्कर काट रहे हैं। मां-बाप, बहन-भाई, चाचा-ताऊ आदि सब रिश्ते बहुत पीछे छूट गए हैं। मां-बाप की निगाह अपने बच्चों की वापसी की राह तकते-तकते पत्थर हो जाती है। जो घर से एक बार बिछुड़ा वह सारी उम्र वापिस नहीं लौटता। दाना-चुग्गा आदमी को कहां-कहां नहीं ले जाता। सूना पिंजरा इस सदी का सब से बड़ा यथार्थ बन चुका है।

जीवन की ढलती सांझ में तेजी से थकते जा रहे शरीर और लगातार कम होती जा रही कार्यक्षमताओं के बीच हमारी बुर्जुग पीढ़ी का सबसे भयानक डर और सबसे असाध्य रोग है- असुरक्षा की भावना के साथ-साथ लगातार अकेला होते जाने की भावना। आज के शहरी जीवन में भागदौड़ और आपाधापी बढ़ गई है परिवारों के आकार घटते जा रहे हैं। बिखराव, टूटन और अलगाव की भावनाएं सर्वत्र हैं जिनका सबसे अधिक असर बूढ़े लोगों पर पड़ता है।

इस चूहा दौड़ ने समस्याओं को बढ़ा दिया है। सभी लोग बाहर निकल जाते हैं। घर के ज्यादातर सदस्यों के पास बुर्जुगों से बात करने का समय ही नहीं है और कुछ अन्य लोगों का नजरिया भी घर के बड़े-बूढ़ों की परेशानी का कारण बन जाता है। जरूरत इस बात की है कि बुर्जुग लोगों को एक संसाधन के रूप में स्वीकारा जाए। कुछ परिवार उन्हें परिसम्पत्ति नहीं बल्कि बोझ के रूप में ही लेते हैं। एक निश्चित उम्र के बाद हमारे यहां बुर्जुगों को परिवार में एक अनावश्यक सामान की तरह मान लिया जाता है।

लगातार बढ़ते हुए ओल्ड ऐज होम्ज आज के जमाने और आज के समाज की एक कड़वी सच्चाई है। अब शहरों में गरीब बुर्जुगों के रहने का कोई स्थान नहीं है। जो रह रहे हैं वे दबे-घुटे, उपेक्षित और दुखी हैं। इन्हें अपनों द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर छोटे स्थानों पर अकेले रहने पर मजबूर होना पड़ता है। गांवों व छोटे कस्बों में सिविल सुविधाएं और अन्य आधारभूत सहूलियतें इतनी पिछड़ी और बदहाल स्थिति में हैं कि सामान्य बुखार तक के लिए समुचित उपचार नहीं मिल पाता। असाध्य या बड़े रोगों के इलाज की बात तो जाने ही दीजिए।

बुढ़ापे में शरीर थकने के कारण दिल से सम्बधित रोग, मधुमेह, रक्तचाप या जोड़ों में दर्द जैसी आम समस्याएं तो होती ही हैं लेकिन इन सबसे बड़ी समस्या है भावानात्मक असुरक्षा। इस के कारण बुजुर्गों में बेचैनी, तनाव, चिड़चिड़ापन और उदासी घिर आती है।

अमीर घरों में नौकर रख दिया जाता है या घर के बूढ़े लोगों को किसी ओल्ड ऐज होम में टिका दिया जाता है जिस के कारण बुर्जुग को खुशी या संतोष नहीं मिलता जितना कि अपने ही परिवार में रहकर मिलता है। मातृ देवो भव और पितृ देवो भव की संस्कृति वाले देश में पश्चिमी समाज की तरह ओल्ड ऐज होम में रहने वाले नागरिकों में अकेलेपन की भावना तेजी सी बढ़ रही है।

ऐसा नहीं है कि अमीर लोगों के पास जगह की कोई कमी होती है कि वे अपने बूढ़े माता-पिता के लिए जगह न दे सकें। बूढ़े लोग न तो पैसा चाहते हैं न ही बड़ी सुविधाओं की मांग करते हैं। वे तो सिर्फ इतना चाहते हैं कि अपने जीवनकाल की शरद वेला में अपने बच्चों और पोते-पोतियों के साथ रहें, उनका स्नेह पा सकें व उन्हें फलता-फूलता देख सकें।

फिर भी देखा गया है कि वे सीनियर नागरिक काफी खुशकिस्मत हैं कि जिन्हें उनके बेटा या बेटी ओल्ड ऐज होम में भर्ती करवा कोई सीट या रूम रिजर्व करवा तो देते हैं।

जो इतने भाग्यवान नहीं है या जो बुर्जुग स्त्री अकेली रह जाती है उसे अपने उदासीन बच्चों के बीच रहकर भी उपेक्षा और विषाद् का दंश झेलना पड़ता है। कई बार बूढ़े लोग इतने साधन-सम्पन्न होते हैं कि स्वयं ही किसी अच्छे रिटायरमेंट रिर्जाट या ओल्ड ऐज होम में रूम खरीद लेते हैं या मासिक किराए पर रहने की क्षमता रखते हैं।

चाहे बच्चे अपने बुर्जुगों से दरकिनार हो जाएं या चाहे तंग आकर बड़े-बूढ़े अपने बच्चों या पोते-पोतियों से अलग होकर किसी ओल्ड ऐज होम या सस्ती जगह चले जाएं, एक बात तो यकीनी है कि यह बुर्जुगों का दिल ही है जो तार-तार होता है, उन्हें ही जुदाई के सबसे अधिक दंश सहने पड़ते हैं।

O

लेख

लघु कथा कितनी लघु हो

❑ गौरी शंकर वैश्य विनम्र

भारत में ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों के आख्यान, हितोपदेश पंचतंत्र की बोध कथाएं वेद उपनिषदों में वर्णित प्रतीक कथाएं आदि लघु कथाएं ही है, जिनका विभिन्न रूपों में सृजन प्राचीन काल से होता रहा है। विदेशों में भी टालस्टाय, मैक्सिम गोर्की, खलील, जिब्रान चेखव आदि विश्व साहित्यकारों में लघु कथा परम्परा के पुष्पित व पल्लवित किया है। 20वीं शताब्दी के सातवें दशक के आस-पास लघु कथा एक आन्दोलन के रूप में उभरी।

आज लघुकथा का अस्तित्व एक सम्मानित और सर्वमान्य विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उसे विशिष्ठ स्थान मिल रहा है। उसका किसी विधा से द्वन्द्व नहीं है और वह अपनी लोकप्रियता लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों के बलबूते सिद्ध कर चुकी है।

लघु कथा कितनी लघु होनी चाहिए। इसका सर्वमान्य उत्तर नहीं दिया जा सकता। शब्द में आकारीय लघुता इसकी प्रमुख विशेषता होती है। लघुता का आधार शब्दों की संरचना निश्चित करके अथवा सीमाओं में बांधकर निर्धारित करना दुराग्रह होगा तथापि इसमें प्रमुख कथातत्व तो होने ही चाहिए यथा भाषा की सादगी, शब्दों की कसावट, स्वाभाविक अभिव्यक्ति, सहज संप्रेक्षणीयता, सोद्देश्य प्रतीकात्मकता, कुशल भाव-संयोजन, कथ्य की एकाग्रता, प्रखर प्रभावोत्पादकता-इन तत्वों की सूची में कथाकार/पाठक स्वविवेकानुसार परिवर्तन कर सकते हैं इसके लिए यह कथन अत्यंत सटीक है कि लघुकथा एक प्रकार से कम आय वाले एक अर्थशास्त्री का अपना निजी बजट है जिसे वह प्रबुद्धता के साथ बहुत सोच समझकर इस प्रकार बनाता है कि प्रत्येक पैसे का सार्थक उपयोग हो सके।

लघु कथा, लघु कहानी नहीं है। कुछ कथाकार कहानी को लघु आकार में लिख देना ही लघु कथा मान लेते हैं। यह अनुचित तथा अन्यायपूर्ण है। जिस प्रकार किसी गद्यांश का भावार्थ उसकी एक तिहाई शब्द संख्या से अधिक नहीं होना चाहिए उसी प्रकार आकार में लघु होते हुए भी लघु कथा कथ्य को भावपूर्ण ढंग से स्पष्ट करने में सक्षम होनी चाहिए। कथ्य प्रवाह ही इसकी उत्कृष्टता चाहिए होती है। समय साक्षेप तथ्य प्रधान होने के कारण इसमें भूतकाल की घटनाओं और भविष्य की सम्भावनाओं का घाल-मेल नहीं होना चाहिए

---

* *117, आदिल नगर, लखनऊ 226022, मो. 9956087585*

अन्यथा लघु कथा का वास्तविक सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। अनावश्यक-असम्बद्ध तथ्यों के लपेटने से उद्देश्य से भटकाव निश्चित है। लघुकथा में कथ्य अनिवार्य सत्ता और प्राणतत्व है। यह चुटकलों, विनोदपूर्ण कथनों तथा हास-परिहास के प्रसंगों का पर्याय कदापि नहीं हैं। इसमें काव्यगत, शिल्पगत तथा प्रभावगत गुणधर्मों का आनुपातिक समावेश वांछनीय है।

लघुकथा साहित्य उपवन में फलता-फूलता एक सम्पूर्ण बोनसाई वृक्ष है जिसकी शीतल छांव में भले ही बैठा न जा सके किन्तु उसकी हरियाली, सुगन्ध और सुन्दरता हृदय को असीम सुख, आत्मगर्व और शीतलता अवश्य प्रदान करती है।

लघुकथा जीवन की व्याख्या है यह युगधर्म के अनुरूप तथा सम्दर्भों से परिपूर्ण विद्या है। जिस प्रकार पद्य में दोहा, लघु छंद में सशक्त रचना होती है उसी प्रकार गद्य में लघु कथा अपनी मोहक सीमित लघुता से अमिट प्रभाव डालती है इसकी सबसे बड़ी कसौटी यही है कि प्रतिध्वनि सुनाई दे कि क्या यह जीवन का सत्य उद्घाटित कर सकी है।

लघुकथा का भविष्य उज्जवल है। आवश्यकता है इसके सतत् संर्वद्धन सिंचन और संरक्षण की।

O

निबंध

हिमाचली-पहाड़ी-काव्य में देश प्रेम

❑ डॉ० पीयूष गुलेरी

पहाड़ी के उद्भव और विकास के साथ ही पहाड़ी-काव्य के जन्म और विकसन शीलता की यात्रा कथा जुड़ी हुई है। यहां हम अपने शोध-पत्र के विषय को पहाड़ी काव्य में देश-प्रेम तक ही सीमित रखकर पहाड़ी-काव्य रचना में देश-प्रेम संबंधी रचना धर्मिता पर विचार करेंगे। वैसे मोटे रूप से पहाड़ी कविता को तीन काल-खण्डों में विभाजित किया जा सकता है:- उन्नीसवीं शती से पूर्व की पहाड़ी कविता उन्नीसवीं शताब्दी के प्रांरभिक चरण की पहाड़ी कविता और स्वातंत्र्योत्तर पहाड़ी कविता। उन्नीसवीं शताब्दी की शिष्ट पहाड़ी कविता की उपलब्धता के अतिरिक्त उस समय और उस से पूर्व का इतिहास अधिकतर लोक-गीतों में ही देखा जा सकता है, जबकि शिष्ट और सनाम पहाड़ी कविता के कतिपय नमूने उपलब्ध हुए हैं। उपलब्ध पहाड़ी कविता का विषय तत्कालीन युगानुरूप शृंगारिक है। वीरगाथाओं, वीरता पूर्ण लोकगीतों और देश-प्रेम से परिपूरित पारंपरिक गीतों में भले ही देश-प्रेम झलकता है तथापि उपलब्ध शिष्ट कविता में इस प्रकार के भाव का प्राय: अभाव देखने में आया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में स्वतंत्रता सेनानी एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी पहाड़ी-गांधी बाबा कांशीराम के उदय से पहाड़ी-कविता में देश-प्रेम की भावना मुखर होकर सामने आती है। पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम पर कवियों को संदर्भित करके कुछ कहने से पूर्व देश-प्रेम शब्द की संदर्भायित व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। यथा जिस अखंड भारत को हम देश कहते हैं उसका आधारभूत ढांचा अनेकानेक प्रदेश-खंडों से पूरित विविधता-पूर्ण मिश्रित संस्कृतियों से युक्त व्यवस्था पर आधारित है। अस्तु, कवि जब प्रदेश-प्रेम की बात करते हैं तो उसे भी हम सीमित परिवेश में देश-प्रेम की संज्ञा ही से अभिहित करते हैं। हमारा मानना है कि विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं के कवियों द्वारा वर्णित निज प्रदेश-प्रेम वर्णन वृहद रूप से देश-प्रेम ही समझा जाएगा। अस्तु पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम के वृहद स्वरूप को प्रदेश-प्रेम के साथ टंकित करके देखने का हमारा प्रयास रहा है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि पहाड़ी के शिष्ट काव्य में देश-प्रेम की भावना आधुनिक पहाड़ी के आदि-कवि पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम के काल में घनीभूत होकर सामने आई है। पहाड़ी गांधी फक्कड़ और घुमक्कड़ नुमा फकीर किस्म के कवि थे, जो अपने समकालीन देश-प्रेमी स्वतंत्रता सेनानियों की भांति देश में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, गरीबी, भुखमरी, परतंत्रता, प्रताड़ना और अनेक प्रकार से दुखी मानवता की पीड़ा से उत्पीड़ित थे।

---

* *'अपर्णा श्री' एच-71, हाऊसिंग कालोनी, धर्मशाला (हि०प्र०)176215*

उनके काव्य में एक ओर पहाड़ी प्रदेश का पिछड़ापन प्रदेश प्रेम के रूप में उभरता है, तो दूसरी ओर परतंत्र भारत को स्वतंत्र करवाने का जज़्बा अभिव्यक्त हुआ है। वे सुषुप्त पहाड़ी जनता के कानों में पहाड़ी-काव्य का जैसे यों शंखनाद करते हैं :-

हुण गुलाम, असां नीं रैह्णा, चाहे लक्ख दुखां जो सैहणा,

नां रेहई नगदी नां गैह्णा, जदो तिवकर एह् हुकूमत रैह्णी।

तदों तांईं एह हालत ऐ रैह्णी, काशी रा मन्नों कैह्णा।

असां हुण गुलाम नीं रैह्णा।

आज़ादी के दीवाने और फांसी के फंदों पर झूल जाने वाले परवानों की वीरता और आततायी फिरंगियों की हुकूमत के विरुद्ध जेल भरो अभियान जैसे अनेक भावों का प्रकटीकरण इन पंक्तियों में खूब हुआ है:-

....तुर्क नःहठ्ठे, पठाण नःहठ्ठे मुगलां रे घर सोग पेया।

पुर्तगाली आए, फ्रांसीसी आए, फिःरी फिरंगी सौदा बेचणा आया।

फिःरी सन सत्तावन आया/सूरज नेह्रैं छिपया

राहुए केतुए री काली छाया/कांशी इस बेला घबराया

.....गोरखे, पंजाबी, सिख राजेयां /अपणे अपणे टुकड़े ताईं देस द्रोह कीत्ता / आज़ादी री अग्ग नी बुज्झी नाना, तांतिया, झांसी री राणी/एह सब अमर होई गेए। शहीदां रे लौहुए री इक्की बूंदा/ लक्खां गंग्गां खूने रियां बगाइयां। कांशिये बी गोत्ता लाया। अपणा जनम सुफल बणाया।

भारत देश के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य संबंधी-अग्गैं पिच्छैं नगरी घुमदी-शीर्षक कविता का सार तत्त्व आज़ादी हासिल करना है। सन् 1942 ईसवीं तक के स्वतंत्रता आंदोलन के जेल भरो-भाव का बारूद भरना कवि-धर्म का मर्म है। यथा : -

कांशी जिंद गुआणी/ जिंदड़ियां लज्ज नीं लाणी इक बारी जम्मणा/बब्बे री लज्ज रक्खणी देश बड्डा ऐ/ कौम बड्डी ऐ/ एह् जिंद अमानत उसरी/ कुलजा मत्था टेकी कनें/ इन्कलाब बुलाणा/ कांशी असां जेल जाणा।

देश के निम्न और निम्न मध्यवर्ग में व्याप्त निर्धनता का भाव यों प्रकट हुआ हैं:- निक्के-निक्के माह्णुआं जो दुख बड़ा भारा, मिल्ला दी नीं रोटी, किंह्यां होणा गुजारा?....सरकार-बी डराए सांझो, बेड़ियां-बी पाए सांझो, नौकर बी दबाए सांझो, हाक़म बी खाए सांझो जैलदारा, लम्बरदारा होर चौकीदारा।....

यही नहीं अशिक्षा और अंधविश्वास के सर्वनाश का बिगुल बजाकर वे सुषुप्त त्रिगर्त-वादियों को पहाड़ी-भैरवी सुनाकर जैसे जगा रहे हो :-

पहाड़ियां दी मारी गई मत्त लोक्को/ ते उजड़ी कांगड़ा देस जाणा /दूएं देसें दे लोक सब जागी प/ म्हारे कांगड़े रे लोक अजें बी सुत्तया/ इह्नां बड्ढेया अपणा नक लोक्को/ ते उजड़ी कांगड़ा देश जाणा!....हुण मन्नों गलाया तुसां कांसिये रा /डर रक्खो तुसां नैंईं फांसिये रा/ असां लौणा सुराज हुण झट्ट लोक्को/ते उजड़ी कांगड़ा देश जाणा!!

कहना न होगा कि पहाड़ी कवि देस/ देश शब्द का अर्थ कभी समग्र भारत तो कभी कांगड़ा देस कहकर प्रदेश को देश के साथ योजित करके उसकी दशा, दिशा और स्थिति का वर्णन करता है। पहाड़ी-काव्य में 'देश' अथवा देस शब्द की यही स्थिति आगे चलकर स्वातंत्र्योत्तर अन्य पहाड़ी-कवियों में भी देखी जा सकती है, जिसे कतिपय संकीर्ण दृष्टि और स्थिर दृष्टिकोण रखने वाले कई पहाड़ी साहित्य-समीक्षकों ने कवि-कल्पना की समझ-विहीनता के कारण इसे बड़ा काव्य दोष भी मान लिया है। जबकि वास्तविकता यह है कि पहाड़ी काव्य में देश अथवा देस शब्द गांव, प्रदेश और समग्र भारत देश, तीनों ही अर्थों में द्योतित हुआ है और उसे उसी भाव, अर्थ और संदर्भ से योजित करने पर वास्तविक काव्यार्थ का आस्वादन संभव होगा।

देखा जाए जो देश-प्रेम, वीरता, शौर्य, बहादुरी, बहादुर-वीरों, सेनानियों पराक्रमियों के प्रति प्रेम, उत्साह, नमन, समर्पण और आत्मोत्सर्ग-जन्य भावों के साथ-साथ महान व्यक्तियों के गुणगान, प्रकृति-प्रेम अर्थात् पर्वत, घाटी लता-गुल्म, पेड़, झरने, नदी, प्रपात और प्रतीक यानि गांव में प्रदेश-देश खंड की हर शह के प्रति निज भाव-स्नेहातुरता, प्रेम का प्रस्फुटन और उद्भावन सभी सूक्ष्म-भाव-तत्त्व मिलकर देश-प्रेम के भाव को विराट क्षितिज पर चित्रित करने की क्षमता का गौरव प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से बाबा कांशीराम से बहुत समय पूर्व गुलेर राज्य के नृपति बलदेव सिंह की हस्तलिपि में उपलब्ध गीतियों का उल्लेख करके पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम को देखने से पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम का वर्णन काल सन् 1662-1675 ईसवी तक पीछे चला जाता है। राजा बलदेव के अनुसार इन गीतियों की रचना विक्रम सिंह नरेश की रानी ने की थी। श्रीमती का नाम उपलब्ध नहीं है। विक्रम सिंह का शासन-काल 1662-1675 ईसवी पड़ता है। अतः संदर्भित गीतियों का रचनाकाल भी इसी कालविधि के अंतर्गत माना जाएगा। कल्याण देवी के पुत्र तथा अपने पति विक्रम नरेश की शौर्यता का वर्णन रानी साहिबा ने एक गीति में यों किया है :-

कल्याण देवी दा जाया -/ जो चंद देह्या तिज्जो वर जी मिल्लेया तेग बड़ा तलवारी/ चतुर कन्हैया, आप चम्बे दी डाली सिफत तुम्हारी।

इसी प्रकार रानी दुर्गा देवी से संबंधित गीति की पंक्तियां भी द्रष्टव्य हैं:-

धन-धन रानी दुर्गा देइये/ तैं गोविन्द सों चित्त लाया गौआं गोखड़ियां जो घा पुआया/ अच्छे बन्हें अटयालड़े जित्त नीर ठण्डा/छौं घनेरी, पंछी रैह्न सुखालड़े। (हिमभारती, मार्च

1975, पृ. 16-17, श्री कांत प्रत्यूष गुलेरी)

यहां गीति-कर्त्री, शूरवीर की जन्म-दात्री माता, शूरवीर, वीरता का गुणगान,पशु-पक्षी-प्रेम, लोक-कल्याण भावना और निर्झर-वापी-नदियों के प्रति स्नेहिल कोमल-भाव अपने क्षेत्र अथवा देश के प्रति सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-प्रदर्शन के भावों से आप्लावित है। पहाड़ की नारियां न केवल नारी सुलभ-विशेषताओं से सम्पन्न थीं प्रत्युत काव्य रचना-कर्म में भी तल्लीन रहीं और उस कर्म में भी शौर्य और देश प्रेम जैसे शाश्वत मूल्य उद्घाटित हुए हैं। चूंकि दस्तावेजों के अभाव में सनाम, गीतियां, रचने वाले कवियों, कवयित्रियों की अक्षुण्ण और परिमाण पूर्ण परम्परा नहीं मिलती कदाचित इसीलिए हमने पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम से ही पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम की प्रस्तुत लेख में विधिवत शुरूआत की बात की थी किन्तु तथ्यों पर आधारित उपलब्ध काव्यांशों का उल्लेख किये बिना आगे बढ़ना साहित्य धर्म के विपरीत है। वैसे भी शोध के आधार पर भविष्य में ऐसी रचनाएं उपलब्ध होने की प्रबल संभावना से इंकार भी नहीं किया जा सकता। कहना न होगा कि पहाड़ी-काव्य में देश-प्रेम की दृष्टि से बाबा कांशीराम से पूर्व के काव्य में इन गीतियों का साहित्यिक और साहित्येतिहासिक महत्त्व भी रेखांकनीय है।

आधुनिक पहाड़ी-कविता के मुख्य कवि पहाड़ी गांधी के समकालीन सुजानपुर टीहरा निवासी हरनाम दास जी की रचनाओं में भी उल्लेखनीय देश-प्रेम के भाव मिलते हैं, जिनमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों एवं अनपढ़ता तथा अशिक्षा के विरुद्ध सजगता की चेतना-प्रसार है। स्वर्गीय कवि भूदेव शास्त्री द्वारा दिये गये कवि हरनाम दास के गीतों का यहां उदाहरण दिया जा रहा है। उनकी रचना का प्रस्तुत काव्यांश दर्शनीय है :

माए! मैं तां मुनुएं दा पात्तर पाणा! देरे लाड़िया पर जादू खःलाणा।.....अड़ेसियां, पड़ेसियां छाड़ छड़ाणी, जोगिएं दातरा बजाणा। चेले जोगी ओपरा दसदें, साधणी-साध बुलाणा। चाचिया लाया, तांइयें खुआया, सौकणी जो दसदे खुआणा। दुद्धें देहंइये बिच धागा दित्ता जापिका मंत्तर चलाणा। कपड़े भांडे जोगिएं नीं छड्डे, चेल्लयां खाणे जो दाणा। 'हरनाम दास' इक ज्ञाने बाज्झी मुन्नुएं दा रोग नीं जाणा।

पहाड़ी काव्य में देश-प्रेम का ऐसा सुस्वर लोक कवि प्रताप चंद शर्मा के गीतों में मुखर हुआ है। कवि प्रताप चंद के गीत इतने लोकप्रिय हुए कि कवि के जीवनकाल में ही वे लोकगीत बन गए। कवि प्रताप चंद कांगड़ा घाटी की प्रकृति और वन-पर्वत तथा मनोहारी सुषमा से प्रभावित होकर सहज स्वर में गाता है :-

ठण्डी-ठण्डी हौआ चलदी, झुलदे चीलां रे डालू कि जीणां कांगड़े दा!

एक अन्य गीत का मुखड़ा देखिए :-

सुण कांगड़े देया लोका तथा दो नारां, दोनारां ओ लोक्को लश्कदियां तलवारां आदि गीतों में देश-प्रेम के भाव पाठकों एवं श्रोताओं को विभोर किए बिना नहीं रहते। नेफा और लद्दाख

जैसे दुर्गम स्थलों पर अपने वीर रणबांकुरे प्रेमी को विदाई देती हुई वीरांगना कहती है कि इस समय देश को तुम्हारी आवश्यकता है इसलिए रण प्रयाण करो। नव-विवाहिता अपने पति को वैवाहिक प्रतीक चिन्हों के माध्यम से और उनका वास्ता देकर अपने प्रेम और देश-प्रेम की कच्चे धागे की डोर से बांधती है। इसका का उदाहरण गीतकार स्वर्गीय यशपाल के वीरगीत की इन पंक्तियों में देखिए :-

जे तूं चलेया नेफ़ा नौकरी मेरे गले दे हारे लैंदा जायां ढोला! मेरे सिरे दे सालुए लैंदा जायां

जाह्लू लग्गे तिज्जो वेदणा, ताहलु सालुएं ताणी नै सौयां नेफा दिया नौकरी।

इस संदर्भ में गंभरी देवी, शाकंभरी वर्मा, विमला राणा का योगदान भी महत्वपूर्ण है। शांति विष्ट के मौलिक एवं लोकगीतों को एक पूरे व्याख्यापूर्ण निबंध की दरकार है। इन सभी कलाकारों के स्वरचित एवं लोकगीत गायन एक इतिहास रचते हैं।

लोकगीतों और गीतों के माध्यम से देश-प्रेम के सशक्त पहाड़ी कवियों में स्वनाम-धन्य लालचंद प्रार्थी का नाम स्मरणीय मील पत्थर है। राजनैतिक धरातल पर अवस्थित सामाजिक कार्यकर्त्ता, बहुभाषा ज्ञाता, पहाड़ी भाषा के उन्नायक लालचंद जी प्रार्थी ने यद्यपि पहाड़ी में इनी-गिनी रचनाएं कीं किन्तु वे स्तरीय और लगभग जीवन के सभी रंगों में सराबोर हैं। कवि प्रार्थी ने विशाल हिमाचल बनाने का स्वप्न लेकर पूर्व पुनर्गठित पंजाब में आंदोलन चलाया था। भविष्य द्रश्टा कवि के रूप में उनका यह गीत हिमाचल प्रदेश के वर्तमान स्वरूप में साकार हुआ है। देखिए :-

चम्बा, कुल्लू, कांगड़ा, किन्नौर इक देस ओ (यहां देस शब्द प्रदेश के लिए प्रयुक्त हुआ है)

ऊना, देहरादून हिमाचल प्रदेश ओ!
इक म्हारा खाण-पीण इक परोआर ओ।
इक बोलचाल इक अंगण दुआर ओ!
इक म्हारे सुपणे दा छोटा सनसार ओ।
इक म्हारे रसम-रूआज इक मेस ओ!

प्रार्थी जी की इसी परम्परा में श्री चन्द्रशेखर बेबस और भवानी दत्त जी शास्त्री के काव्य में भी स्वदेश-प्रेम और प्राकृतिक छटा का वर्णन यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला है। प्रेम की बांसुरी का संबोधित करते हुए एक स्थान पर पंडित भवानी दत्त लिखते हैं :-

हिमाचल री धारां मंझा, हंयूआं रे पहाड़ा मंझा
बज्जी री ओ बंसारिये! तूं-तां मुइये गाई जा।
पुराणे थे पुराणे ताणें, नवें-नवें बाणे मंझा,
सच्चे होर मिट्ठे-मिट्ठे, गाणेयां जो गाई जा !

पहाड़ी भाषा के इसी प्रारंभिक रचनाकाल में अनिल राकेशी की कतिपय कविताओं में प्रकृति और प्रदेश-वर्णन का सुन्दर रूप देखने को मिला था किन्तु बाद में उनकी शायद ही पहाड़ी रचनाएं देखने में आई। पुरानी रचना से एक बानगी निहारिये :-

शीरिष रो साल
फुलदे हर साल तेश्शिए-तेश्शे
फुल्लो-पात्तों हैठ पता न चालदा
किहदे-किहदे री औसी दी बाट
मौसमो रा ठाठ देखणी जुगता

चन्द्रमणि वशिष्ठ 'पहाड़ी मृणाल' का यह पूर्वरचित प्रस्तुत उदाहरण वर्तमान (1999 ईसवी)कारगिल युद्ध के संदर्भ को ही जैसे रेखांकित कर रहा हो :-

शहीद मेरे देशों रे भारत मां रे लाल ताखे मेरी ढाल
माटी री बास तेरे लोहू री
आखी दी पयाश तेरे लोहू री
होठ गे हालो तेरे लोहू री
सांगड़ी बाटो गाये निझीरकी तेरी चाल
शहीद मेरे देशों रे भारत मां रे लाल/ ताखे मेरी ढाल

कहना न होगा कि द्रास और कारगिल सैक्टर के मोर्चों में जो कुछ सन् 1999 ईसवी में घटित हो रहा है वही दो-तीन बार पहले भी हमारे जाबांज सिपाही भोग चुके हैं। कुर्बानियों, बलिदान, प्राणदान के उत्सर्ग की कहानी सैनिकों और अमर शहीदों की जुबानी कवियों की कलम से आखरों में, समय-समय पर स्वर्णाक्षरों में ढलती रही है। पीयूष गुलेरी के सन 1965 ईसवी में भारत-पाक युद्ध के दौरान लिखे गए गीत की ये पंक्तियां वर्तमान (कारगिल-1999 ईसवी) में भी कितनी सटीक एवं सार्थक और प्रासंगिक लगती है।

जम्मुए दे मोर्चे जो मारेयां ओ फौजिया चूड़े जो लाज मत लांदा ओ।
खणखणैंदा बोल्लै मेरिया बांही रा चूड़ा, हारी कनैं घरैं मत औंदा ओ!

युद्ध में अंतिम विजय के पश्चात् घर लौटने तक का इतिहास न जाने कितने अनगिनत शहीदों की रक्त रंजित कुर्बानियों से लिखा जाना संभव होता है, स्वयं काल ही इसका साक्षी है। रत्नसिंह हिमेश की कविता में प्रदेश-प्रेम मुखरित हुआ है किन्तु अब तो उनकी पहाड़ी रचनाएं अनुपलब्धता की स्थिति में है। वे अब पहाड़ी काव्य रचना से जैसे संन्यास ले चुके हों, वही जानें। काहन सिंह, जमाल सिंह, वीर रस में अच्छी कविता कर लेते हैं जबकि खेमराज गुप्त सागर की रचनाओं में नदियां, पहाड़, निर्झर, पेड़, वन बाग, तड़ाग पशु-पक्षी विशेष रूप में चित्रित हुए हैं। उनका वह गीत जो प्रताप चंद शर्मा के गीत की भांति लोकगीत बन चुका है अभी भी आकाशवाणी से गूंज गूंज कर उनके प्रदेश-प्रेम को साकार करता रहता है : साँएँ-

साँएँ करिदये राविये, मिंजो तेरा डर लगदा आदि.....।

गौतम व्यथित बहुआयामी रचनाकर्मी हैं। उनके देश प्रेम के वर्णन चित्रण का धरातल लोक-साहित्य की सुदृढ़ आधार भूमि पर अवस्थित है। अस्तु लोकगीतों की सी तर्ज़ पर उनका देश-प्रेम की अनेक कलाओं में प्रकट हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है :-

एह् छैल है धरती पहाड़ां दी
पहाड़ां च मन-है खोई जांदा
कोई चेत्ता डसदा उमरां दा
कुथी रूपैं मन पलचोई जांदा

गौतम व्यथित ही की कविता का एक अन्य अंश देखिए :-

एह राणी घाटी धारां दी, मोंहदी-है नाटी नारां दी
दिक्खी नैं हास-मन्हासे जो, भोला मन सच मचकोई जांदा।

गौतम व्यथित की भांति कवि नरेन्द्र अरुण भी विस्तृत धरातल पर देश-प्रेम को उलीकने वाले चितेरे हैं। उनकी हिमाचल प्रदेश का समग्र वर्णन चित्रण करने वाली कविता का मुखड़ा देखते बनता है :-

सुईणा हिमाचल मेरा, ओ रे सुईणा हिमाचल मेरा
हिमाचल सबिते न्यारा रे, सबि मुलखा ते है उपरी
सबि रा दुलारा ऐ, ओ रे सुईणा हिमाचल मेरा

ज्ञान चंद प्रकाश, हरि प्रसाद सुमन, मौलूराम ठाकुर, रामदयाल नीरज, भीमदत्त काले, रत्न चंद देहलू नन्देश कुमार, मोतीलाल हाण्डा, सोहन लाल गुप्त, आर० के० पैंछी, तुलाराम, कृष्ण कुमार नूतन, कृष्ण चन्द्र शर्मा, जोगिन्द्र लाल प्रभाकर हरीदास, ओमप्रकाश प्रेमी, देवकी नन्दन, कांशीराम, एस०पी० दवात, विनोद शर्मा, अमरनाथ वशिष्ठ, के० सी० कायस्थ, सीताराम खजूरिया, डी०डी० गुलज़ार, देव शर्मा प्रभृति अनेक कवियों की रचनाओं में देश-प्रेम के भाव यत्र तत्र सर्वत्र देखने को मिलते हैं, जो कवियों की चेतना और भावबोध के उद्घाटक हैं। प्रत्येक कवि की कविताओं में से अंश-सहित उदाहरण देना इस लेख में संभव नहीं है किन्तु यह स्पष्ट हैं कि उक्त कवियों की कविताओं में देश प्रेम और प्रदेश वर्णन यथेष्ट स्थान पाता है।

जयदेव किरण की प्रसिद्ध कविता 'पत्थरो रे माणू' के निम्नांकित अंश में कवि प्रदेश-गौरव से किस प्रकार भाव विभोर है, आन्नद उठाइये :-

म्हारे सिरमौरो री ये लाल-लाल धरती
बोलुएं हिमाचलो परशुराम आए थे
जमुना कनारे चुप्प पौंटे रा पाणी बोलो

कवि दरबार गुरू गोविन्द लगाए थे
गोरखे री खौंखरी मलाओण किले चली
अंगरेजो रीया कित्ती फाड़िया।
अज-बी हिमाचलो रे गभरू शहीद होए
बाघा अते छम्य जौड़िया।

प्रत्यूष गुलेरी वर्तमान समाज के जीवन मूल्यों के अवमूल्यन और चारित्रिक ह्रास से चिंतित तो हैं किन्तु साथ-साथ नकारात्मक दृष्टिकोण की अपेक्षा देश-वासियों को सकारात्मक भूमिका के निर्वाह हेतु तैयार करते हैं और कविताओं द्वारा खुला आमंत्रण देते हैं कि देश रक्षाहित इन चुनौतियों को सहर्ष स्वीकार करें :-

हुण अलाहमे न्होरे काहदे, रली-मिली कुछ कम कमाअ।
बेह्ल्ले बूस्सर लैणे काहजो, मिहणता रे नौए गीत्तां गाअ।
इक दुए पर चिक्कड़ फैंकी, के फायदा ऐ छोली छाह!
तुसां बगाने दोषां दस्सी, खोह्त्ते हन अणमुक गराहा।

उधर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में हुए विकास, वैज्ञानिक उन्नति और औसत व्यक्ति की जागरूकता तथा अधिकार-सजगता पर देशराज डोगरा 'दर्द धमेटवी' प्रसन्न ही नहीं पूर्ण संतुष्ट भी दिखते हैं।

उदाहरणार्थ :-

धारां दी राणी बोल्ली- ऐ, शिमले दी गद्दी डोली-ऐ।
मैं अग्गैं पिच्छैं जांदी नीं, लोक्कां दा कुछ खांदी नीं।
मैं अपणी गल गलान्नी आं, मैं अपणी गल सुणान्नी आं।

दूसरी ओर पहाड़ी गज़लिया मनोहर शर्मा सागर पालमपुरी शहीदों की कुर्बानयां तथा भारत देश के जांबाज सैनिकों को हार्दिक प्रणाम करते हुए अपना भावांजलियां देते हैं :-

होए अमर एह सूरमे, कुःण बोलदा मरे ?
वीरां इह्नां तिहासे रे,पतरे नौएं भरे!
हिक्कां-च प्यार देसे रा, बाहां च बिजलियां
देस री आनी तांई, एह् मौत्ती ते नीं डरे।
चेत्ते इह्नां रे कौमा जो, औणे नं बार-बार
प्यारे हिमाचले रे शहीदां जो नमस्कार

भक्तराम मुसाफिर हिमाचल प्रदेश की प्रकृति, लोक-जीवन और लोक-संस्कृति की ठेठ-ठाठ का कवि है। अस्तु हिमाचल-वर्णन के अन्य अनेक बिम्बों के पर्त-दर-पर्त वर्णन के साथ-साथ इतर भाव भी काव्य रूप में साकार हुए हैं। सागर पालमपुरी की भांति शहीदों के प्रति धन्यवाद पूर्वक नमन की इसी भावना से ओत-प्रोत मुसाफिर की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

जिह्नां लड़ी लड़ाईयां पाकिस्तान, जिह्नां फूक्के सैवर मीराज।
छड्डेया कोई नीं नौं नसाण, अज उहनां बीरां जे हार पहनाइये॥
उन्हां री जैजैकार बुलाइये। तिहनां रे गीतां सुणिये, सुणाइये॥

लोक रंग के कवियों में संसार चंद प्रभाकर और नवीन हलदूनवी के जिक्र किये बिना यह निबंध अधूरा रहेगा। संसार चंद प्रभाकर हिमाचली रचना संसार में बहुत पीछे से आए किन्तु अपनी रचना-धर्मिता की प्रतिबद्धता और रचना-कर्म की अपार शक्ति के कारण अनेक रचनाओं के द्वारा हिमाचली साहित्य को परिपुष्ट करने में समर्थ हुए। अनेक काव्य संकलनों के इलावा उन्होंने हिमाचली भाषा का प्रथम महाकाव्य माया रचकर हिमाचली रचना-साहित्य में अपना एकांत स्थान बना लिया।

नवीन हलदूनवी में अपने प्रदेश और देश की संस्कृति के प्रति प्रेम-भावनाएं कूट-कूट कर भरी हैं। यही कारण है कि उसने लोक संस्कृति, लोकगीत, लोक वाद्य, लोक लिबास, लोक-यंत्र, लोक-श्रृंगार, लोक पकवान और हिमालयन प्राकृतिक शोभा को अपनी रचनाओं के माध्यम से कविताओं में समेट देने की कोई कसर नहीं उठा रही। नवीन के लगभग आधी दर्जन से ऊपर काव्य संकलन प्रकाशित हैं और उन्होंने पहाड़ खण्ड-काव्य की रचना द्वारा अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उक्त दोनों कवियों की कविताओं से भी प्रदेश-प्रेम और देश-प्रेम के शताधिक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इस कड़ी में शहीद शीर्षक से रूप शर्मा, वधेयां देसे दे वीर जुआनां शीर्षक प्रत्यूष गुलेरी, आस परदेसियां नाम से रूप शर्मा निर्दोष, याद आवणें वीर म्हारे नामक नरेन्द्र अरुण, हिम्मत केरिया शीर्षकांतर्गत लाल चंद प्रार्थी, वीरां जो समर्पण शीर्षक से पीयूष गुलेरी, देश की रक्षा शीर्षक से तानसेन कायस्थ, मेरा देश म्हाचल नाम की बृजेश अनमोल की रचनाएं न केवल महत्वपूर्ण प्रत्युत स्तरीय मानी जाएगी। यही नहीं इसके अतिरिक्त खेमराज गुप्त सागर, मनसा राम शर्मा अरुण, बिहारी लाल बहार, प्रीतम चंद प्रीतम, रामकृष्ण कौशल, सुदर्शन कौशल, बृज कौशल, लेसरू राम, हरदयाल सिंह, अमर सिंह चौहान, ओंकार लाल भारद्वाज चंगर, डी०एन० कौल नदौवणी नेसू राम आनन्द, ज्ञान चंद प्रकाश, हरिराम जस्टा दीपक डोगरा आदि ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनमें यथार्थ, कल्पना और बिम्बात्मक विधान की रंगीनियों से देश-प्रेम को चित्रित करने की कलात्मक क्षमता विद्यमान है।

हरिराम जस्टा की नव्वो प्रैशो, रामकृष्ण कौशल रचित पंजीसाल अजादिया दे, मौलू राम ठाकुर कृत लोकतंत्र री बरकता, शेष अवस्थी प्रसूत मेरा हिमाचल तथा हरदयाल लिखित भारती खुन्द कुणे पुकारा आदि कविताओं में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में देश-प्रेम के भाव स्पष्ट झलकते हैं। यहां बृज कौशल की कविता में से नमूने के तौर पर एक अंश प्रस्तुत है :-

जिह्नां देवियां ने देसे दी खात्तर विधवा दा भेस बणाया
देस असां दा जुग-जुग जिये, अपणे मत्थे रा टिक्का मः साया।
मैं परणाम करां तिह्नां देवियां, मैं परणाम करां।

शबीर कुरैशी, शमी शर्मा, हरिप्रसाद सुमन तथा ऋषि भारद्वाज की कविताओं और गीतों में लोकगीत शैली का प्रभाव मणिकांचन योग माना जाएगा। सी०आर०बी० ललित का नाम उन प्रारंभिक पहाड़ी कवियों में लिखा जाएगा जिन्होंने अपने संगठन और रचना-कौशल से पहाड़ी काव्य को निरंतर सम्पन्न किया। ललित का जुएणौ रे आंशू काव्य संग्रह सन् 1975 ईसवी में प्रकाशित रचना है जिसकी यथेष्ट कविताएं प्रकृति-प्रेम, देश-वर्णन, वीरता शौर्य, पराक्रम, सुषमा और प्रदेश-प्रेम के भावों से ओत-प्रोत हैं।

अश्विनी गर्ग में देश-प्रेम के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश की मनोरम रूपयष्टि और रूप छटा को मनोहारी रूप में अभिव्यक्त करने की अपार क्षमता है। यथा :-

वीरां, पीरां, फकीरां री धरती, सुर्ग ते ऐ न्यारी दुर्गा दी धरती।
बोतल होर रिश्वता दा राज कैंह्आऐ, एह गौरी दी धरती कैंह बदनाम होऐ
शिव जी दी घाटी एह् धरती हमारी, मैं ऐसी मिट्टी जो बन्दां लख बरी।

कर्मचंद श्रमिक, मुलख राज शांतलवी, शिव उपाध्याय, विद्यानन्द सरैक और हरिदास संगम प्रभृति कवियों का काव्य देश-प्रेम के भावों से सराबोर दिखता है। रश्मि मधुप, बख्शी राम मुसाफिर, परसराम तोमर, प्रेम प्रकाश निलाहटा, इन्द्रजीत सूरी आदि कवियों ने भी पहाड़ी काव्य को अपने सुन्दर एवं सशक्त भाव विह्वल देश-प्रेम के कृतित्व से पूरित किया है।

कहना न होगा कि पहाड़ी काव्य-संसार में देश-प्रेम की भावना की जो शुरूआत पूर्व वर्णित महिला रचनाकारों ने अपनी गीतियों के माध्यम से की थी उस परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में कमला वर्मा कमल, सुदर्शन डोगरा, रक्षा कुमारी, कुमारी सुमन लता, विद्यालता नेगी, सरिता वैद्य, सुभाषणा देवी भारती तथा अमिता शर्मा प्रभृति कवयित्रियां अपना एकांत अमूल्य योगदान दे रही हैं। कमला वर्मा की रचनाओं में जहां वीरता का स्वर मुखर हुआ है वहां सुदर्शन डोगरा पुरातन परम्पराओं की सनातनता का चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। अमिता शर्मा की कविताओं में प्रकृति और प्रदेश-वर्णन आधुनिक शैली और मुक्त छंद में रूपायित हुआ है। कमला वर्मा की कविता में से उद्धृत पंक्तियां पठनीय हैं :-

दिले रा टुकड़ा अःखी रा तारा।
मेरा हिमाचल प्यारा, मेरा हिमाचल प्यारा।
ऋषियां री धरती, देवतेयां रा बासा
सारेयां मुलखां तैं न्यारा, मेरा हिमाचल प्यारा॥

पहाड़ी-काव्य में ग़ज़ल के माध्यम से भी देश-प्रेम की भावना झलकती है। पारम्परिक उर्दू ग़ज़ल शैली से हटकर इसमें सामाजिक कुरीतियों पर जमकर कुठाराघात हुआ है। परमानन्द शर्मा, प्रेम भारद्वाज, शेष अवस्थी, पीयूष गुलेरी, प्रत्यूष गुलेरी, गौतम व्यथित, पवनेन्द्र पवन, शबाब ललित, सागर पालमपुरी प्रभृति रचनकारों में यह व्यंग्य भली भांति देखा जा सकता है। परमानन्द शर्मा की गज़ल के चंद शेर देखिए :-

अज्जे तक बी झूठ सच्चे जो, सूलिया पर लटकाई जन्दा।
जिह्जो पचैंता राखा रक्खेया, सैह्-इ खेतरां खाई जान्दा॥

अन्यच्च :-

रामराज दे पर्दे पिच्छैं रावण छिंजां पाई जान्दा॥

प्रेम भारद्वाज की मान्यता है :-

धरती दी धरया नीं मुक्की, गासैं पैर छुआणा कैहजो?

कांगड़ा लोक साहित्य द्वारा प्रकाशित मिंजरा और प्रत्युष गुलेरी द्वारा सम्पादित 'मने दी भड़ास' काव्य-समूहों के सहयोगी कवियों की कविताओं में भी देश-प्रेम वर्णन देखे ही बनता है। इनमें चांदी मल कौंडिन्य, युगल किशोर डोगरा, शंकर सान्याल, हरिचन्द पुष्कर कंवर कर्त्तार हमीरपुरी तथा गिरिधर योगेश्वर आदि प्रमुख कवि हैं।

युवा कवि विश्वभर शर्मा हलदूनवी की कविता में लोक-संस्कृति, लोक-जीवन, लोक मुहावरे तथा स्वतंत्रता सेनानियों का योगदान आदि स्वर मुखर हुए हैं। उनकी 'रामे सांह्ईं राम सिंह' शीर्षक कविता में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले सिपहासालार राम सिंह पठानियां की वीरता का सुन्दर वर्णन हुआ है। एक स्थान पर कवि कहता है :-

रामे सांह्ईं राम सिंह सच-इ-भगवान था।
दिक्खी किंह्यां जुल्मां जो हक्खीं मिट्टी सकदा?
मुल्खे री सेवा तांईं छड्डै जेहड़ा घरबार
मौता दा मुकाबला-बी सैहयो करी सकदा॥

पूर्णचंद पद्मबजूरा पहाड़ी काव्याकाश में भ्याग्णू (प्रभाती) सितारे जैसे प्रकट हुआ और तुरंत विलीन हो गया। प्रतिभाशाली, प्रत्युत्पन्नति, अल्पजीवी इस कवि में अनेक संभावनाएं विद्यमान थीं। पद्मबजूरा की कविता में से एक उदाहरण देखिए :-

मैं गभरू अपणे देसा दा, तिह्नां दे हाण बरेसा दा।
जेह्ड़े सरहद्दां पर छाए, जिह्नां दुसमण मार मकाए।
मिंजो जाणा दे माए, नाम कमाणा दे माए॥

अन्यच्च :-

मैं जम्मेयां उस धरती, जिस जो दुनियां खूब पछाणे
मेरी हस्ती हर कोई मनदा, मिंजो हर कोई जाणे
हत्थ दिखाणा दे माए, ओ मजा चखाणा दे माए॥

ठाकुर दास मजलूम, अंशोक भारती, ओंकार सिंह पठानियां बेदाग, संतोख सिंह बेदी, देवराज शर्मा, कृष्ण दत्त शर्मा, शक्ति राजपूत, लक्ष्मण दास मस्ताना, संतोष सनेही, रमेश

मस्ताना, कुलदीप डोहरू, ओम प्रकाश सरस्वत,पवनेन्द्र पवन, शिव उपाध्याय, शमी शर्मा, राजगोपाल शर्मा आदि अनेक कवियों की कविताओं में अनुकरणीय देश-प्रेम का वर्णन चित्रण हुआ है जो विभिन्न संदर्भो और प्रसंगों से संदर्भायित होकर वीरता के भाव जगाता है तथा देशहित में कुछ कर गुजरने की अदम्य प्रेरणा देता है।

ब्रदी सिंह भाटिया, मेघ सिंह ठाकुर, उत्तम चंद शर्मा, ओम प्रकाश रही, प्रत्यूष उर्मि, के०आर० भारती०, विद्यालता नेगी, राजकुमार त्रिगर्ती, हिमाल चौहान, सत्यनारायण स्नेही, मदन हिमाचली, कृष्ण चंद कायस्थ, शंकर लाल शर्मा, रजनी कांत, भूपसिंह रंजन, राकेश वैद्य, रमेश जसरोटिया, तेज सिंह पंवार प्रेम लाल गौतम, मोती लाल घई, कृष्णचंद महादेविया, सुरेश कुमार प्रेम, केशव चन्द्र, मोहन साहिल, रत्न चंद्र कोतवाल, मदन चड्ढा, ईश्वर चन्द्र ईश तथा ओंकार सिंह फलक ऐसे कवि हैं जिनकी अनेक कविताएं देश-प्रेम और प्रदेश-प्रेमानुभूति की भावाभिव्यक्ति से मण्डित हैं। यहां इन सभी कवियों की रचनाओं के सोदाहरण काव्यांश प्रस्तुत करना संभव नहीं है। इसी कारण इन रचनाकारों का देश-प्रेमी कवियों की हैसियत से मात्र नोटिस लिया गया हैं। नमूने के तौर पर ओंकार सिंह फलक की रचना का उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है। यहां कवि द्वारा हिमाचल प्रेम में प्रदेश सुषमा का मनोहर वर्णन हुआ है :-

बीह्ङुआं थल्लियां, खड़े कुआलू, छल-छल छल-छल बगदे नालू।
कुतकी सेऊ, शाढ़ी, आड़ू, आलू, गोभी, खुम्भ कचालू॥
पराल, छलैटा, भो तां कानी, महाचले दी क्या गाल्ल गलाणी?
कुतकी हयूंएं भरियां धारां कुतकी नचदियां बांकियां नारां।
रूत रंगीली कंड़ियां ब्हारां, धारां घाटिया छौंउआं ठाह्रां!
गोट्ठा सौंदे पटुआं ताणी, म्हाचले दी क्या गल गलाणी॥

वास्तविकता यह है कि पहाड़ी काव्य में शांति के समय जहां कवियों ने प्राकृतिक सुषमा और देश-गौरव का वर्णन किया है वहां देश पर हुए आक्रमण के समय शौर्यपूर्ण कविताएं रचकर देश-प्रेम के भावों को साकार किया है। यह चाहे भारत-पाक युद्ध हो, चाहे चीनी आक्रमण अथवा बंगलादेश में पराक्रम-प्रदर्शन पहाड़ी कवि अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा सचेत और जागरूक रहा है! स्वातंत्र्योत्तर पहाड़ी-काव्य में तो देश-प्रेम के ये भाव-विविध आयामों और नानाविध बिम्बों के माध्यम से प्रकट हुए हैं।

प्रस्तुत शोध निबंध लिखते समय लेखक को शताधिक कवियों की रचनाओं के अवगाहन का सुअवसर मिला है किन्तु खेद है कि प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में से उदाहरण दे देकर उनके साथ चाहकर भी न्याय करना संभव नहीं हो सका। यहां जिन कवियों का नामोल्लेख करके मात्र नोटिस लिया जा रहा है, लेख का यह संदर्भ आगामी अनेक शोध-पत्र लिखे जा सकने की संभावना को उजागर करता है।

सारांश में पहाड़ी काव्य की गीतियों की रचना के देश-प्रेम वर्णन से लेकर वर्तमान कारगिल द्रास सैक्टर के घुसपैठियों को भारतीय सीमां से खदेड़ बाहर करने के निर्णायक युद्ध तक पहाड़ी रचनाकार देश-प्रेम के सरोकार से बावस्ता दिखता है, जो पहाड़ी-काव्य में युगबोध-धर्मिता के दर्शन को ही उजागर करता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पहाड़ी-काव्य में संतोषप्रद ढंग से देश-प्रेम विस्तृत धरातल पर रूपायित हुआ है। कारगिल-युद्ध के पराक्रमी वीरों और युद्ध-यज्ञ में प्राण होम कर देश-रक्षा करने वाले जांबाज़ शहीदों को समस्त पहाड़ी रचनाकारों की ओर से लेखक की यह भावभीनी श्रद्धांजली और सश्रद्ध प्रणाम स्वीकार हो :-

प्राणां जो गुआई करी सीमा थी बचाई दित्ती,
'सौरभ' महान वीर, ठण्डे झोले-झोलिए।
जानीं बाजी लाई जेह्ड़े, जानां पर खे:ल्ली जाह्न,
तिह्नां जां-बाज़ां दियां किरतां जो फोलिए।
बोलदा 'पीयूष' तोपी-तोपी ताले बैरी तिहनां,
वीरां दी शहादवां जो, पलकां नै तोलिए।
दित्ती कुर्बानी जिह्नां कारगिल जाई कनैं-
तिह्नां जो नमस्कार बार-बार बोलिए॥

संदर्भ-ग्रन्थ

1. हिम भारती
2. काव्य-धारा 1, 2, 3, 4
3. हिमधारा : हिमाचल वीर अंक
4. माला रे मणके
5. पहाड़ी दिवस समारोह : 1985 ईसवी स्मारिका
6. फुल्लां रा गुलदस्ता
7. मनें दी भड़ास: प्रत्यूष गुलेरी (सम्पादकत्त्व)
8. मिंजरा : कांगड़ा लोक साहित्य नेरटी
9. पहाड़ी गांधी : बाबा कांशीराम रामनाथ शास्त्री डोगरी संस्था, जम्मू।

O

कविता

अँधेरा तो फ़कत भ्रम है

❑ अतुल कनक

हवाएं खूब वहशी हैं,
दिशाएं बी अँधेरी हैं,
मग़र हर हाल में दीपक!
तुम्हें इस रात जलना है.....

ज्योति के पथ की आशा
तुम्हारे दम से कायम है,
बता दो इस जगत को तुम
अँधेरा तो फ़कत भ्रम है,
सुलगना है इरादों को,
कड़े साँचे में ढलना है
तिमिर का ये तिलस्मी राज
तुमको ही बदलना है.....

लिखो संकल्प से अपने
नई गाथा समर्पण की,
तुम्हें ही आन रखनी है
उजाले के प्रखर प्रण की,
चुनौति हर कदम पर है,
छाँव भी एक छलना है/
सवेरे के लिये इस हाल में
तुमको मचलना है।

○

जलते रहना दीपक !

❑ अतुल कनक

जलते रहना दीपक!
बहुत तिलिस्मी
होती है
इस गहन तिमिर की बातें,
सदा उजाला
छला-दिखाकर
तारों की बारातें,
इसकी
कपट भरी चालों को
खलते रहना दीपक!!
हो सकता है
मनमोहक हो
षड्यंत्रों की बाँहें,
लेकिन तुम पर
टिकी हुई हैं
सब की शुभ्र निगाहें,
संकल्पित हो
ज्योति पथ पर
चलते रहना दीपक ॥

○

* 3ए 30, महावीर नगर- विस्तार कोटा-324009 (राजस्थान), फोन : 0744 2470160, 09414308291

कविता

"मेरी उदासी का सबब"

❑ अशोक 'दर्द'

मैं रोज देखता हूँ
स्कूल के प्रांगण से नाले के पार
टैंटों के आस-पास खेलते
नंग-धड़ंग, मैले-कुचैले बच्चे,
और फटी मैली साड़ियों में लिपटी औरतें
आपस में झगड़ती-उलझती, गालियां बकतीं,
मर्दों को देखता हूँ रोज
नये-नये रूप धरकर कंधे पर बैग लटकाए
कभी ज्योतिष तो कभी हकीम के रूप में
टैंटों से निकलते,
फिर मिलता हूँ बाजार में भी
उन नंग धड़ंग मैले-कुचैले बच्चों से,
जब वे मांग रहे होते हैं भीख,
हर रोज किसी नयी तरकीब के साथ;
शायद वे जानते हैं धंधे का हुनर
तकनीकी तौर पर;
विडम्बना है यह कि....
पेट तक ही सीमित हो गई है इनकी दुनिया,
वे नहीं जानते सामने के मेरे स्कूल में
एक बच्चे की कितनी फीस है,
वे यह भी नहीं जानते कि,
स्विस बैंक में किसके खाते में कितना 'माल' है,
वे नहीं जानते देश को आजाद हुए
कितने वर्ष हो गये हैं;

---

* *प्रवास कुटीर, गांव व डा० बनीखेत, तह.-डलहौजी, जि.- चम्बा (हि.प्र.), मो० -9418248262*

वे सिर्फ जानते हैं कि पेट को कितनी रोटियां चाहिए,
वे जानते हैं तो सिर्फ...,
अपने धंधे की टेक्नीकल बारीकियां
जिनसे कुछ रोटियां ईज़ाद हो जाती हैं,
मैं रोज उन्हें देखता हूँ
और रोज उदास हो जाता हूँ
स्कूल के पास, नाले के पार
स्कूल से दूर इन बच्चों को,
क्योंकि...., मैं इनके लिए
कुछ नहीं कर पाता हूँ.....।।

o

कविता

नयन मनहर

❑ मधुर गंज मुरादाबादी

मोह लेते हृदय मेरा
ये तुम्हारे नयन मनहर,
चाहता देखा करूँ जी भर
इन्हीं को मैं निरन्तर।
पलक पल भर भी न झुकने दूँ
इन्हें अपलक निहारूँ,
झील की गहराइयों में,
दृष्टि की नौका उतारूँ।
डूब जाऊँ अतल तल में
लौट कर आऊँ न तट पर।
सघन मद की अरुणिमां रंजित
हुए से स्निग्ध डोरे,
ये अकथ लावण्यमय हैं
श्याम, रक्तिम और गोरे।
बाँध लेते हैं मेरा मन,
जा नहीं पाता छिटक कर।
ये न होते तो जगत के
इन्द्रधनुषी रँग न होते,
और तब अभिव्यक्ति के भी
ये निराले ढँग न होते।
क्यों पहुँच पाती 'मधुर' की,
काव्य-प्रतिभा भी शिखर पर ?

O

* सम्पर्क : गंजमुरादाबाद, उन्नाव (उ० प्र०)-209869, चलवार्ता- 09451376763

कविता

रचनाएं रूठती

❑ मधुर गंजमुरादाबादी

भावों के अर्जित कण,
बरबस है बिखर गये,
नये घाव उभर गये।
अनचीन्हीं घातों से,
आशाएं टूटतीं।
वे सुगन्ध चर्चित क्षण
सबके सब बीत गये,
अधरों के गीत गये।
सतरंगे देशों की,
सीमाएँ छूटतीं।
चरणों में अर्पित मन,
मुरझाया फूल सा।
अनचाहा धूल सा।
सपनों के रंग महल,
कुण्ठाएँ लूटतीं।
मेरा हर परिचित प्रण,
मरुस्थल में भटक गया,
दर्पण सा चिटक गया
खण्ड नहीं जुड़ पाते,
रचनाएँ रूठतीं।

○

* सम्पर्क : गंजमुरादाबाद, उन्नाव (उ०प्र०) -209869 चलवार्ता-09451376763

कविता

चिराग

❑ शारदा साहनी

चिराग टिमटिमा रहा है कोई
अंधेरे की बांहों में-
कि जैसे बालयोगी कोई
यज्ञ करें हवाओं में

समय की टुकड़ियाँ चलीं
आकाश के कगार पर,
विटपियों ने गीत गाए
हवाओं के सितार पर।

धरा के यज्ञ कुण्ड में
हर वस्तु यहाँ हवि बनी,
समुद्र मंत्र पढ़ रहा
यज्ञ कुण्ड गाँओं में

कामना तरस रही
मन ही. मन कसक रही,
कि जैसे बेड़ियाँ पड़ी हो
हर मनुज के पांवों में।

समय आशुतोष सा
चल रहा बिना झुके
नहीं गीत गा रही,
गीता की छाँओं में

कला दिखा रहा कोई
विश्व की सभाओं में
ज्यों भोर के अंबर की
सातरंगी कलाओं में

उस की हर आवाज पर
उस के हर नाद पर,
राम भी रहीम भी
गायत्री मंत्र पढ़ रहा
वहाँ नितांत एकांत है
दीठ विवश हो रही,
सन्नाटे की गूंज तक
होती वहाँ शांत है

O

* *Sharda Sawhney, Law No.2, House No. 14, Surya Vihar, Talab Tillo, Bohri Chungi, Jammu.*

कविता

शून्य

❑ विनोद कुमार गुप्ता

शून्य में जो जिया वह अमर हो गया-
शून्य जिसने पिया वह पवन हो गया-
नाद-अनुनाद में बॉसुरी तान में-
चित्र में, काव्य में, वह अमर हो गया।

शून्य सबमें समाया सभी शून्य में-
शून्य में शून्य हो लीन होना भला-
शून्य पर बोल कर शून्य में गूंजता-
स्वर नहीं भूलता आज तक याद है।

भीड़ है, शोर है, शून्य में प्राण पर
खोजते जा रहे, जिन्दगी की कथा
कब? कहाँ? कौन? क्या? किस जगह-
मिल गया, शून्य का वह सहारा नहीं भूलता।

पास में कौन है? दूर पर कौन है?
शून्य में साथ सब, शून्य में खो गये-
फिर अकेले वही शून्य में प्राण हैं-
शून्य में चित्र हैं शून्य में बिम्ब हैं।

शून्य को बेधने की जरूरत नहीं-
शून्य को खोजने की जरूरत नहीं-
शून्य अनुभूति ही शून्य की खोज है-
शून्य अपना यहाँ और कुछ भी नहीं।

शून्य में जो मिला वह अनूठा मिला
जो जगत में मिला सिर्फ झूठा मिला

---

* उपाध्यक्ष निराला साहित्य परिषद, महमूदाबाद (अवध सीतापुर), उत्तर प्रदेश मो०-9450803518

इसलिये शून्य की साधना में जियो-
इसलिये शून्य अपने अहं को करो।

शून्य का मित्र भी, शून्य का चित्र भी-
साथ जीता सदा, साथ रहता सदा-
इस लिये शून्य से प्यार करना भला-
इस लिये शून्य की अर्चना भी भली।

शून्य में सूर्य है शून्य में चन्द्र भी-
शून्य में यह धरा, शून्य में व्योम है-
शून्य में अनगिनत पिण्ड् लटके हुये-
शून्य हमको लगा तो हुआ क्या बुरा?

शून्य से आये हम, शून्य में जायेंगें-
शून्य में जी रहे शून्य अपना सखा-
शून्य की अर्चना में लिखूं गीत मैं-
शून्य में शून्य तुमको समर्पित सखा।

शून्य को छोड़कर दंभ है द्वेष है-
शून्य को छोड़कर राग है क्लेश है।
शून्य को छोड़कर व्यर्थ संघर्ष है-
शून्य हो दाहिने यह रहो सोचते।

o

कविता

''मां''

❑ राज राही

जाड़े की ठन्डी रातों में
अक्सर
मुझे मां याद आती है
छाती चिपकाए उस की
लोरी
वड़ी याद आती है
अपने हाथों से खिलाना
घूंट घूंट दूध पिलाना
मां
तेरी आंखों से छलकती
स्नेह की एक एक बूंद
सच में बहुत याद आती है
आज फिर जाड़े की रात है
पर तूं नहीं
मां
बिन बताए तू कहां निकल जाती है
कैसे सोऊंगा मैं
खाँऊगा कैसे मैं
कौन सुनाएगा लोरी मुझे
सच्ची मां-तू बहुत सताती है
मां तू मुझे बहुत याद आती है

○

* *नई बस्ती रियासी वार्ड न०1 हाऊस न : 4, पोस्ट ऑफिस, तहसील एवं जिला रियासी-182311-*
मो०- 94191-56053

दोहे

(पर्यावरण के प्रति)

□ डा० सुरेश उजाला

जो मूर्त-अमूर्त है, आस-पास विस्तार।
वो सब पर्यावरण है, जीवन का आधार॥

जलवायु-उत्ताप-भू, जीव और निर्जीव।
ये ही पर्यावरण की; रखते सुदृढ़ नींव॥

नीर-प्रदूषण अति बढ़ा इसका करें निदान।
करना होगा अन्यथा, ज़हरीला जलपान॥

भू-दोहन की अति करें जैव सम्पदा नाश।
अब सचेत हो जाइयै, अरे कुमति के दास॥

ध्वनि प्रदूषण कर रहा, मानव को बीमार
हृदय-रोग बढ़ने लगा, कान हुए बेकार॥

जंगल से मंगल मिले इनको करो न नष्ट।
नहीं भोगती रहेंगी, सदा पीढ़ियां कष्ट॥

कचरा निस्तारण करें, यूँ सारे उद्योग।
पर्यावरण पुनीत हो, मानव रहे निरोग॥

चंगे-चंगे वृक्ष के, कितने चंगे रंग।
मानव इनके संग तो, वे भी उनके संग॥

जितनी है चादर बड़ी उतने पैर प्रसार।
आबादी का डालिए, अधिक न भू पर भार॥

जगत-प्रदूषण हरण के, वृक्ष एक संयंत्र।
जपते ये अनवरत हैं, प्राण वायु के मंत्र

समझ लीजिए पेड़ भी, एक आपका पूत।
उसे घरौंब्बा मानिए, गृह सदस्य मज़बूत॥

पीपल के तरू के तले, बोध पा गये बुद्ध।
चिन्तन में आया यहां, पर्यावरण विशुद्ध॥

○

---

* *108 तफरोही, प० दीनदयाल, पुरम् मार्ग, इन्दिरा नगर, लखनऊ-227105. मो० 9451144480*

गीतिका

❑ रमेश चन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

आँधियों से दूर कब थे?
व्याधियों से दूर कब थे?
पाप करने लग गये थे?
पापियों से दूर कब थे?
उपद्रवों से ग्रसित दल-दल
बागियों से दूर कब थे?
लाल होना था, हुये भी
लालियों से दूर कब थे?
रात में ताले खुले सब
चाबियों से दूर कब थे?
त्याग कर पीने लगे फिर
प्यालियों से दूर कब थे?
पद प्रतिष्ठा और पैसा
माफ़ियों दे दूर कब थे?
चाहते भी कोसते भी
नारियों से दूर कब थे?
कृष्ण का संदेश लाये
गोपियों से दूर कब थे?

○

* डी 4, उदय हाउसिंग सोसायटी, बैजलपुर, अहमदाबाद-380015

गीतिका

❑ रमेश चन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

जब से हम अपने हृदय की अनसुनी करने लगे।
बुद्धि की चालों में आकर हम स्वयं फँसने लगे
जब से पैसा हो गया है नातों रिश्तों से बड़ा
पूर्वजों की थातियों के संग हम बिकने लगे
नग्नता ने पार कर दी आज देखो हदें
निर्लज्ज होने के लिये शस्त्र नव घड़ने लगे
प्रेम के सौहार्द के दीपक न जलते हैं कहीं
धार्मिक उन्माद के पाण्डाल नित सजने लगे
द्वार चंदन के बने हैं, रातरानी महकती
वासना की बाँह में कौमार्य को कसने लगे
सद्भाव से सहकारिता से जीना मुश्किल हो गया
आदमी-को-आदमी से दूर वे करने लगे
धर्म को अब कौन पूछे? लम्पटों की मौज है
नाम लेकर धर्म का पाप भी बढ़ने लगे,

○

क्षणिकाएँ

❑ सोनिया उपाध्याय

1. मन नदी में समाने चला था
खुद सागर हो गया!

–o–

2. तुम्हारा महकता,
अनमोल स्पर्श
खाली कर गया हाथ!

–o–

3. टूटा सपना,
बिखरा जीवन–
मन खाली!

–o–

4. बादलों के आकार सा.....
पल–पल बदलता तुम्हारा रंग,
करता है उत्पन्न जीवन में–
अर्थहीन कशमकश !

–o–

5. छूटा खिलौना,
महकी बगिया–
पकड़े लाठी,
ढलता सूरज!

–o–

6. खिलता गुलाब,
झांकता खिड़की,
ढूँढता प्रेम–!

O

* 0/14- Irrigation Colony, Canal Road Jammu., M- 9205072090, 9018067603

लघुकथा

ड्यूटी

❒ राधेश्याम 'भारतीय'

मैं कई साल से दसवीं कक्षा की वार्षिक परीक्षा में डयूटी दे रहा हूँ। डयूटी स्थल पर पहुँचते ही अनजान चेहरे सामने आ खड़े होते कि हमारे बच्चों का ख्याल रखना।

अब उन्हें क्या कहे। कई बारी तो जान-पहचान वाले आ जाते हैं कि हमारे बच्चों का ख्याल रखना। इस समस्या का हल पता नहीं कब निकलेगा।

आज भी मैं डयूटी पर पहुँचा तो एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा, ''सर, एक मिंट के लिए इधर आयेंगे?''

मैंने सोचा वही रोना लेकर आया होगा कि मेरे बेटे का ख्याल रखना। मैं उसकी बात सुनने लगा।

उसने कहा, ''सर, मेरा लड़का पढ़ाई में बहुत होशियार है....''

''फिर आप क्यों घबरा रहे हैं?''

''सर, मैं घबरा नहीं रहा, मैं तो यह कह रहा हूँ कि मेरे बच्चे का विशेष ध्यान रखना। कोई बच्चा उसे परेशान न करे।''

क्या! उसके ये शब्द सुनकर मेरा मन उस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा से भर उठा।

○

महक

❒ राधेश्याम 'भारतीय'

उस दिन मैं दफ्तर की कैंटीन में बैठा चाय पी रहा था। वहीं पास ही दो बाबू लोग आपस में बतिया रहे थे। बता ईमानदारी-बेईमानी पर हो रही थी। एक कह रहा था- ''जैसा साहब कहता है वैसा करता जा.....''

''कैसे लगा दूं नकली बिल.... यह तो सरासर बेईमानी है....''

''अरे! ये ईमानदारी के चोंचले चार दिन के हैं.. और फिर तुझे भी तो हिस्सा दे रहा है....''

''नहीं....मैं ऐसा कदापि नहीं करूँगा.....मैं अपने ईमान का सौदा कभी नहीं करूँगा...''

''जानता है साहब से टक्कर लेने का मतलब''

नौकरी ही जायेगी ना... देखा जायेगा...

वह बोले जा रहा था। मेरी नजर वहाँ से हटकर जैसे ही लॉन में खिले फूलों की ओर गई तो मुझे लगा उनमें जो महक की अनुभूति हो रही है उसमें उस बाबू की ईमानदारी की गंध भी मिली हुई है।

○

---

* नसीब विहार कालोनी, घरौंडा करनाल-132114 मो०-09315382236

बाल कहानी

भूल का अहसास

❑ डॉ. रामसिंह यादव

एक समय की बात है। प्रतापपुर पर राजा प्रतापसिंह शासन करता था। वह बहुत प्रतापी था। उसके पराक्रम की गूंज दूर-दूर तक थी। वह इतना पराक्रमी था कि पड़ोस के राजा भी उसके पराक्रम की प्रशंसा करते थकते नहीं थे।

एक दिन राजा जंगल में शिकार खेलने गया। शिकार खेलते-खेलते वह बहुत दूर निकल गया। दिन भर शिकार करते हुए वह थक भी गया था, और आराम करना चाहता था। किंतु जंगल में विश्राम करने का कोई स्थान दिखाई नहीं दे रहा था। प्राय: राजा दल-बल के साथ शिकार पर जाया करता था। आज पहली बार वह अकेले शिकार पर निकला था। भूख-प्यास के कारण उसकी जान निकली जा रही थी। तभी अचानक उसे एक दस साल की लड़की दिखाई दी। लड़की को जंगल में देख वह आश्चर्य चकित हुआ। थोड़ी देर में उसे एक शेर दिखाई दिया। शेर लड़की की तरफ जा रहा था। राजा ने बाण चढ़ा लिया।

राजा को बाण चढ़ाते देख लड़की चिल्लाई, ''राजन! यह अनर्थ मत कीजिए। शेर मेरा दोस्त है। मैं प्रतिदिन इसके साथ खेलती हूं। मेरे मित्र को मत मारिये।''

किन्तु राजा ने एक न सुनी। वह शिकार का मौका हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। अत: लड़की की बात पर ध्यान नहीं दिया और बाण चला दिया। शेर मारा गया। लड़की तड़प कर वहीं गिर गई और बेहोश हो गयी। राजा इस घटना से परेशान हुआ। वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या करे ? वह लड़की के पास पहुंचा और उसे गोद में उठा लिया। थोड़ी देर के बाद लड़की को होश आया। वह बोली, ''कौन हो तुम ? कहां से आए हो ?''

इससे पहले कि राजा कुछ कहता वह बोली—''तुम राक्षस लगते हो। राक्षसपुरी से आये हो ? आखिर मेरे दोस्त ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? तुमने मेरे दोस्त की हत्या क्यों की ? तुम्हारा परिचय क्या है ?''

---

* *पत्रकार, 14, उर्दूपुरा, उज्जैन, फोन-0734-2574825*

लड़की, जिसे तू राक्षस कह रही है, वह इस राज्य का राजा है। मेरा नाम प्रतापसिंह है। मैं राक्षसपुर का नहीं प्रतापपुर का हूं। मुझे अपशब्द कहने वाले को जीने का अधिकार नहीं है। बोलो, तुम्हें कैसी मौत चाहिए ? मरने से पहले तुम किसी को याद करना चाहती हो ?

मरने-मारने की बात करने वाले तुम कैसे राजा हो ? राजा तो अपनी प्रजा की रक्षा करता है। तुम हत्यारे राजा हो। हमें ऐसा राजा नहीं चाहिए।

ऐ लड़की! तू मुझसे डरती भी नहीं। अब मरने के लिए तैयार हो जा। यह कहकर राजा ने तलवार उठा ली। जैसे ही राजा लड़की पर प्रहार करने चला, वह चीख पड़ी। तलवार हाथ से गिर गयी। राजा का हाथ लहूलुहान हो गया। राजा यह समझ नहीं सका कि बाण आया कहां से ? तभी राजा को एक अधेड़ व्यक्ति की चुनौती सुनाई दी। लड़की पर प्रहार करते हुए तुम्हें शर्म क्यों नहीं आयी ? डूब मरो चुल्लू भर पानी में। यह कहते हुए वह व्यक्ति सामने आ गया।

लड़की क्षण भर में कुछ पत्ते तोड़ कर लायी। राजा के घाव पर पत्ते बांध दिये। इस प्रकार लड़की द्वारा इलाज पाकर राजा द्रवित हुआ। राजा ने उस अधेड़ व्यक्ति से पूछा, ''तुम कौन हो ? इस लड़की से तुम्हारा क्या रिश्ता है ? यह लड़की बहुत साहसी एवं समझदार है।''

मैं एक साधारण व्यक्ति हूं। मुझे आप इस जंगल में भूले भटकों का रक्षक भी कह सकते हैं। यह मेरी बेटी है। मैं पिछले बारह साल से इस जंगल में रह रहा हूं और तुम्हारे राज्य का अभागा नागरिक हूं। मेरा घर वीरपुर गांव में था। भूख के कारण मेरा बेटा छटपटाकर मर गया था। जो इस लड़की से बड़ा था। तुम्हारे मंत्री को इस बात का पता था। उस पर कोई आंच न आये, इसलिये उसने मुझे देश निकाला दे दिया। तब से यह जंगल ही मेरा घर है। मेरी पत्नी के मरने के बाद शेर ही मेरी बेटी का दोस्त था जिसे तुमने छीन लिया। अब यह कैसे जीवित रह सकेगी ? अपनी मां के मरने के बाद बड़ी मुश्किल से यह संभल सकी थी।

''वनरक्षक! मुझे अपनी भूल पर अफसोस है। मुझे जो दण्ड देना चाहो, वह मुझे स्वीकार है। लो यह तलवार और मुझे मेरे अपराध का दण्ड दे दो।'' राजा ने पश्चाताप करते हुए कहा।

नहीं राजन्! आपको अपनी भूल का अहसास हो गया है। कहते हैं मन से प्रयाश्चित करने वाला अपराधी नहीं रह जाता, अब तुम अपराधी नहीं हो। जंगल में रहने वाले लोग

भी इतना समझते है।

वनरक्षक! मुझे तुमने माफ कर बहुत बड़ा एहसान किया है। तुम इस बच्ची को लेकर मेरे साथ राजदरबार में चलो। तुम्हें शायद यह पता नहीं होगा कि मेरी कोई संतान नहीं है, इस बच्ची को मां मिल जायेगी और रानी को बेटी। तुम बहादुर तीरंदाज हो तुम्हें पांकर मेरी सेना की ताकत बढ़ जायेगी।

राजन्! मुझे अब लज्जित न करें। राजा का आदेश सर्वोपरि होता है। आपका आदेश सिर-माथे पर।

लगभग बीस वर्षों बाद राजकुमारी मेताली, प्रतापपुर की शासिका बनी। राजा प्रतापसिंह उसे राजकाज सौंपकर वनरक्षक के साथ उसी वन में आ गये जहां एक दिन वनरक्षक एवं मेताली अचानक मिले थे। वनरक्षक के साथ रहते हुए राजा वन में भूले-भटकों को रास्ता दिखाने लगे।

o

अनुवाद

'लहु का रंग'

❑ मूल. डोगरी : तारा दानपुरी
अनु. सुनीता भड़वाल

आज सूरज बहुत उदास प्रतीत हो रहा था। सहमा, निस्तेज तथा उद्विग्न-सा मानो इसके जोश, तेज व लालिमा को किसी ने छीन लिया हो।

सूरज की ही तरह आज शहर भी उदास गुमसुम कुछ सहमा हुआ सा था। अन्य दिनों की भांति बाजार में न कोई चहल-पहल न कोई शोर। मंडी भी बेअवाज, मंदिरों की घंटियां, मस्जिदों की अज़ानें सभी कुछ मौन धारण किए हुए थीं। चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ। हर कोई घरों में दुबका, सहमा बिल्कुल किसी उजड़े शहर की मानिंद। जीवन के नाम पर मात्र गश्त करते सैनिकों के कदमों की चाप जो तारकोल बिछी सड़क पर 'टक-टक' ध्वनि पैदा कर खामोशी की चादर पर मानो ठप्पे लगा रही थी या फिर कभी-कभार किसी फौजी वाहन की आवाज पल-दो-पल के लिए सन्नाटे को चीर जाती।

आज अस्पताल में ही युद्ध स्तर पर कार्य चल रहा था। दवाइयां, टीके, टांके, आप्रेशन और पट्टियां मानो समूचे शहर का काम मात्र अस्पताल में ही सिमट गया हो। दंगे में घायल बच्चे-बूढ़े, औरतों-मर्दों से आज अचानक अस्पताल में मरीजों की संख्या बढ़ गई थी मानो ठंडी पड़ी राख में अचानक चिंगारी भड़क उठी हो।

समाज का एक सम्प्रदाय दूसरे पर दोषारोपण कर रहा था कि दूसरे समुदाय वालों ने उनके धार्मिक स्थानों पर आक्रमण कर उनकी आस्था को क्षति पहुंचाई है जबकि दूसरे सम्प्रदाय वाले अपने पर हुए घिनौने अत्याचारों का बखान कर रहे थे। बिना सोचे-समझे बिना सच को जाने हरेक अपने-अपने तर्कों पर स्थिर था, हर कोई मन के करघे पर क्रोध का ताना-बाना बुन रहा था। ठंडी पड़ी राख अब सुलग उठी थी, हवा के एक झोंके से लपटें उठीं और विकराल रूप धारण कर लिया। सारा शहर नफरत की आग में जल उठा। हथियारों की तेज धार एक-दूसरे से टकराने लगी, रास्तों पर गर्म लहू बहने लगा। मित्रता, सौहार्द सभी कुछ घृणा की अग्नि में होम हो गया।

पुलिस तथा कथित नरसंहार को रोकने में असमर्थ रही थी इसलिए सेना को बुलाना पड़ा था। शहर में कर्फ्यू घोषित कर दिया गया। कोई कहीं भी था उसे वहीं रुकना पड़ा, एक

अनचाही कैद में। कभी-कभी इस प्रकार की कैद भी कितनी आवश्यक हो जाती है। मनुष्य की पाशुता पर अंकुश लगाना पड़ता है उसके निज की रक्षा के लिए।

सेना स्थिति संभालने का प्रयत्न कर रही थी लेकिन स्थिति अभी भी चिंताजनक थी। घृणा से ओत-प्रोत चेहरे, अंगारें बरसाती खूंखार आंखें, लहू से सने शरीर हर किसी के मन में डर पैदा कर रहे थे। जनता के मन-मस्तिष्क पर अंकित हादसों के निशान अभी भी ताजा थे। अस्पताल में भी क्रूर घटनाओं के चिह्न इधर-उधर बिखरे पड़े थे। हर किसी के चेहरे पर आतंक की छाया स्पष्ट देखी जा सकती थी। कोई चेतना शून्य पड़ा था तो कोई मौत को परास्त करने के लिए जूझ रहा था।

वह भी एक बेड पर बेहोश पड़ा था। सिर-मूंह पट्टियों से लिपटा हुआ, स्टैंड पर लटकी खून की बोतल से बूंद-बूंद खून उसके शरीर में प्रवेश कर रहा था।

इसे किसने घायल किया होगा ? इसकी तो किसी से दुश्मनी न थी। इस का नाम तो 'राम रसूल' है। राम-रसूल अर्थात् राम भी और रसूल भी। हिंदू भी और मुसलमान भी। यह एक ऐसा नाम है जो दोनों समुदायों में घनिष्ठता का प्रतीक है। मात्र नाम ही नहीं उसका व्यक्तित्व भी एकता का समर्थक है। विभिन्न धर्मानुयायियों में समानता का अभिलाषी, फिर किसने इस अभिलाषा को खंडित करने का दुस्साहस किया होगा।

इसके बारे में कोई कुछ भी नहीं जानता। यह हिंदू है या मुसलमान। इसे स्वयं नहीं पता कि इसका धर्म क्या है ? इसके माता-पिता कौन थे ? इसका जन्म कहां हुआ ? यह कुछ दिनों का था जब इसे कोई अनाथालय के एक झूले में डाल गया था। बिना किसी शारीरिक तबदीली के, बिना किसी मानवीय संस्कार के, न खतने न यज्ञोपवीत, बिल्कुल कोरा शरीर था उसका, बिल्कुल प्राकृतिक, फिर वार्डन ने ही इसका नामकरण किया था-'राम-रसूल'।

होश सम्भाली तो अनाथालय को ही अपना घर समझा। आश्रमवासियों को अपने बहिन-भाई तथा वार्डन को अपना पिता माना। वहीं के अनाथ बच्चे दोस्त और साथी थे जिनके साथ उसने जीवन के सुख-दुख के पल बांटे थे। अभावग्रस्त होते हुए भी अभाव पीड़ित नहीं थे। कमी का अफसोस नहीं था अधिक का मोह नहीं था। सौहार्द, स्नेह, अपनत्व सभी कुछ था कोई भेदभाव न था, जीवन पूर्णतया सरल एवं निष्कपट था। जिसे संसार त्याग देता है उसे अनाथालय अपनाता है। स्वर्ग समान सुख यह आश्रयस्थल प्रदान कराता है।

थोड़ा-सा बड़ा होने पर बिना किसी भेदभाव हिंदू हो या मुसलमान के वह चंदा उगाहने जाता। हर नर-नारी में उसे अपने माता-पिता की छवि दिखती और बच्चों में अपने बहिन-भाइयों को महसूसता। हारमोनियम के सुरों में अपनी पीड़ा उंडेल लोगों के दिल द्रवित करता। सभी इससे स्नेह करते और यह सब में स्नेह बांटता। चंदे के बहाने स्नेह का व्यापार करता।

सुबह अर्चना के समय वेद मंत्रोच्चारण–'सर्वे भवन्तु सुखिणाः सर्वे सन्तु निरामयः' वह बड़े चाव से पढ़ता। पाक कुरआन की बहुत-सी आयतें उसे कंठस्थ थीं। बाबा 'बुल्ले शाह' और 'बाबा फरीद' की काफियां और 'कबीर और रहीम' के दोहे वह गली-गली गाया करता। उसका मानना था कि समस्त संसार एक अनाथालय है और इसका एक ही वार्डन है, एक ही मालिक है सारी लुकाई एक ही ईश्वर की रचना है।

जब वह विवाह के योग्य हुआ तो उसने मारिया नाम की एक क्रिश्चन लड़की से विवाह कर लिया तदुपरांत आश्रम छोड़ शहर में अपना घर बसा लिया।

विवाहोपरांत तो मानो साक्षात् सरस्वती इसकी जीह्वा पर आ विराजी हो। हर कहीं इसके गीतों की चर्चा, इसके सुरों की प्रशंसा हो रही थी। दूरदर्शन, रेडियो, टेप या स्टेज शो में इसे सुनकर लोग मंत्रमुग्ध हो जाते। हर कोई इसे अपना मानता। हर कोई इससे स्नेह करता।

लेकिन आज ...आज इसे किसने अप्रिय समझा होगा। ऐसी उत्कृष्ट कलाकृति को खंडित करने का दुस्साहस न जाने किसने किया होगा ? धर्मांध लोगों ने अपना विरोधी जान इसकी आत्मा को छलनी किया होगा। निस्संदेह इसे अपनों ने ही घायल किया होगा क्योंकि इस का तो सभी से स्नेह का बंधन था।

खून की एक बोतल चढ़ने के उपरांत डॉक्टर ने दूसरी लगा दी। जैसे-जैसे खून की मात्रा शरीर में बढ़ती गई, वैसे-वैसे उसकी जीवन ज्योति प्रकाशित होती गई। चेहरे पर जीवन के लक्षण उभरने लगे। आंखों की पुतलियां हिलने लगीं धीरे-धीरे उसने पलकें खोल दीं। वहीं पर खड़े डॉक्टर खुश होकर बोले... 'सरवाइवड'।

धीरे-धीरे उसकी स्मरणशक्ति लौटने लगी। ''बैड'', 'मरीज', 'डाक्टर' 'नर्सें', 'स्टैंड और खून' और खून-खराबा?

इंसान चांद-सितारों तक पहुंच गया लेकिन उसे धरती पर जीने का सलीका क्यों नहीं आया? इससे तो अनाथालय अच्छा था जहां न कोई धर्म के आधार पर भेदभाव न कोई आपसी घृणा और न कोई दंगा-फसाद था सभी में स्नेह, आत्मीयता और सौहार्द था। सभी एक समान थे सभी एक साथ खुशी-खुशी रहते थे।..... नहीं मैं.....मैं जीना नहीं चाहता। इस नफरत की दुनिया में, घुटन भरे वातावरण में मैं नहीं जी सकता। उसकी आत्मा क्रंदन करने लगी।

उसने बैड पर लेटे-लेटे आस-पास का जायजा लिया। वहां कोई नहीं था। डाक्टर वार्ड में से जा चुके थे। नर्स अपने काम में व्यस्त थी। बेहद कमजोरी और दर्द के होते हुए भी उसने हिम्मत जुटाई और बाजू पर लगी 'ब्लड पाईप' की सूई को बाहर खींच दिया। सूई निकलते ही खून छलछल करता बाहर बहने लगा। काफी देर के बाद जब नर्स वहां आई तो देखा कि खून की बोतल खाली हो चुकी थी और खून बाजू में जाने की अपेक्षा बिस्तर पर फैल गया था।

नर्स घबराई हुई भागी और डाक्टर को बुला लाई। डाक्टर सारा दृश्य देख सकते में आ गया। उसने उसकी नब्ज़ देखी, आंखें देखी और छाती को दबाया। लेकिन सब व्यर्थ सब निश्चेष्ट, निष्प्राण। राम-रसूल तो न जाने कब का शरीर रूपी पिंजरे की कैद से मुक्त होकर किसी अनाथालय में जा पहुंचा था।

o

नवांकुर

अंतिम अभिलाषा-(कविता)

❑ अशोक कुमार

माँ! ओऽऽऽ माँ
उठ जाग! बात कर मुझसे
मैं तेरा अंश हूँ
खुश्बू हूँ तेरी साँसों की
संगीत तन-वीणा का
क्या नहीं जानती शक्ति मेरी.....?
या, भूला दिया कर्त्तव्य अपना.....?
माँ बता फिर ये निर्णय कैसे लिया.....?
भय की किसी काली छाया से
या, स्व-इच्छा से।
क्यों असमर्थ हो गई।
मुझे सहने में तीन ही महीनों में।
और, निर्णय ले लिया, छुटकारा पाने का मुझसे
क्या कसूर, क्या पाप किये हैं मैंने.....
सजा जिसकी अगले ही पल मिलने वाली है मुझे
क्या तू किसी ने न-जनी थी?
पोषण नहीं किया माँ ने किसी
काली छाया दिखाने वालों का?
माँ, मैं इस वसुधा पर आना चाहती हूँ
निर्दयी संसार के दिल पर दस्तक देना चाहती हूँ।
तेरे आँगन की धूप में
तेरे आँचल की छाँव में
मैं तेरी गोदी में खेलना चाहती हूँ।
बदल निर्णय, आने दे मुझे.... हे जग जननी!

---

* सम्पर्क- गांव व डाक- ढुराना, तहसील-गोहाना, जिला-सोनीपत-131306-हरियाणा मोबा०-09466549394

''माँ'' शब्द की पहचान यही है
जनकल्याण यही है,
अपने को सार्थक आज धन्य मुझे भी कर दे।
ओऽऽऽ माँ सुन रही है ना .
सुन अगर ऐसा न कर सके तो
मेरी अंतिम अभिलाषा तो पूरी कर देना
जिंदगी न दे सकी मौत तो अच्छी दे देना
मेरे शव खण्डों के मिला चूम लेना एक बार
पा स्नेह स्पर्श तेरे ममत्व का
मैं अमर हो जाऊँगी।
फिर खण्डित रक्त रंजित अस्थि पंखुड़ियों को सहेज कर
अपने आँचल के किसी मैले टुकड़े से ही ढाँप देना
ताकि बच सकूँ इस अमानवीयता की तपिश से।
फिर यदि शक्ति रहे शेष..... ऐ माँ!
इस वत्सलमयी के आँगन में
जहाँ दफनाएँ मुझको वहाँ,
तुलसी एक लगा आना
ताकि दे सकूं हर पथिक को खुशबू अपनी
और ये पीड़ा संदेश तुम्हारा
अच्छा माँ.....
अब मैं मौन हो जाऊँगी सदा-सदा के लिए
छुटकारा पाकर मंगलगान तो करवा लेना
मगर अपनी कच्ची कोंपल को
''बेटी '' कहकर मत पुकार लेना
बेटी कहकर मत पुकार लेना॥

o

उपन्यास अंश

'इस सहरा में'

❑ राकेश वत्स

लोकतंत्र के शव को ढोता किन्नर समाज

ठेकेदार मनमोहन गुप्ता के किसी पार्टी ने टिकट नहीं दिया तो उन्होंने इंडीपेंडेंट कैन्डीडेट यानी कि निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में विधान सभा का इलेक्शन लड़ने का फैसला किया। स्वतंत्रता सेनानी के बेटे के रूप में तो वे प्रचारित हो ही चुके थे, अपनी इस मुफ्त में मिली शोहरत को भुनाने की लालसा ने उन्हें इस तरफ भी भाग्य आजमाने के लिये उकसाया। दोनों लड़के भी सहमत हो गए तो उन्होंने अपने पुश्तैनी गांव रुलदू माजरा से नामांकन भरा और वहां अपने पुराने घर को थोड़ा ठीकठाक करवा कर अपना दफ्तर भी खोल लिया। दफ्तर खुलते ही लोग बधाई देने आए तो जगमोहन ने उनका अपनी खास पसन्द चाय के साथ जलेबी और पनीर के समोसों से इस्तकबाल किया। बस फिर क्या था बधाई देने वालों की भीड़ जमा होने लगी और दफ्तर के एक तरफ कनात लगाकर जलेबी और समोसे तले जाने लगे, मेज-कुर्सियां लगाकर परोसने वालों का भी इंतजाम हो गया और लाला जगमोहन गुप्ता का गला फूलों के हारों से भरने लगा। मशहूर यह हो गया कि 'बधाई देने जाओ और जलेबी समोसे खाओ'। खर्च क्या आ रहा था? सिर्फ दस-बारह हजार रुपये प्रतिदिन, यानी कि तीन लाख या साढ़े तीन लाख मासिक। गुप्ता साहब ने पूरे इलेक्शन पर खर्च करने के लिये पूरे बीस लाख रुपये बैंक से निकलवा कर अलग रख लिये और विश्वास किया जाने लगा कि बड़ी-बड़ी पार्टियों में चल रहे आन्तरिक कलह की वजह से गुप्ता साहब के जीतने के चांसिज दिन ब दिन बढ़ते चले जा रहे हैं।

इस क्षेत्र के किन्नरों ने जब गुप्ता साहब के बारे में सुना तो वे भी एक छोटे-से समूह की हालत में पहुंच गए गुप्ता साहब को बधाई देने। तब तक गुप्ता साहब के दूसरे मित्र भी गांव पहुंच गए थे उनके इस महत्वपूर्ण कारनामें में सहायता करने। किन्नरों ने वहां पहुंच कर ऐसा ठुमका लगाया कि पूरा गांव इकट्ठा हो गया उनका नाच गाना सुनने के लिये। कईं किन्नर तो इतने मोहक कि सिनेमा की नई नायिकाएं भी उनके सामने फीकी नजर आएं। और फिर रीमिक्स हुए गानों पर उनका अपने पूरे शरीर को तोड़ना और मरोड़ना। शराब के नशे में धुत्त रावत, दत्ता, शर्मा ओर चावला ने खूब नोट लुटाए। गुप्ता ने विधायक बन जाने के बाद सूद समेत वसूल कर लिया जाएगा सारा का सारा। किन्नर भी इतने उत्साहित हुए कि वे रोज

आने लगे। रोज यह नाच-गान होने लगा उनके नये-नये लुभावने करिश्मों के साथ। एक तो किन्नरों को रोके कौन और दूसरे जब गांव वाले ही कोई आपत्ति नहीं कर रहे तो फिर किस बला को किसका डर। मुफ्त में मिलने वाला मनोरंजन और मनोरंजन के साथ-साथ जलेबियां और समोसे, और क्या चाहिये था गांव की भोलीभाली जनता को?आसपास के इलाके से भी लोग बाग पहुंचने लगे। खेत बोए जा चुके थे। लोग आने वाली बारिश का इंतजार कर रहे थे। ऐसे में यह इलेक्शन और इलेक्शन के बहाने गुप्ता साहब का यह किन्नर-तमाशा। गुप्ता मनोरंजन प्रिय लोगों के मसीहा बन गए।

यह सब देखकर पूरी जोड़-तोड़ और धन तथा बाहुबल के बल पर टिकट पा लेने वाले बड़ी पार्टियों के प्रत्याशियों के कानों पर जूं रेंगी। पहले तो उन्होंने अपने कुछ बन्दूक धारियों को भेजकर गुप्ता साहब को डराने का फैसला किया, पर गुप्ता साहब के पास ते पहले से ही लाईसंसेधारी उम्दा बन्दूकों के साथ उनके मित्र हाजिर थे, इसलिये यह इरादा तर्क करना पड़ा। और कुछ नहीं सूझा तो पार्टी कैंडीडेटों को भी गुप्ता का मुकाबला करने के लिये गुप्ता का ही रास्ता अपनाना पड़ा। उन्होंने भी किन्नरों का बन्दोबस्त किया। जिन प्रान्तों में इलेक्शन नहीं हो रहे थे वहां से खूबसूरत और जवान मगंवाए गये और होने लगा शहर दर शहर और गांव दर गांव किन्नरों का नाच-गान। पूरा प्रान्त किन्नरबाजी में डूब गया और इस से बहुत से बेकार युवकों में किन्नर बनने की भावना भी जागी। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक का पूरा लोकतंत्री समाज किन्नरों का दिवाना हो रहा था। मीडिया भी इस अनोखे मनोरंजन में बढ़ चढ़कर दिलचस्पी दिखा रहा था। ऐसी हालत में युवाओं के लिये इससे ज्यादा प्रभावशाली प्रेरणा और क्या हो सकती थी भला?

शहर में रहने वाले कुछ बुद्धिजीवियों ने सवाल उठाया तो चुनाव आयोग की भी आंख खुली। उसे भी लगा कि यह तो आचार संहिता का सरासर उल्लघंन है। लिहाजा उसने आदेश निकाला कि इस तरह का नाच-गाना आचार संहिता के अंतर्गत नहीं आता है और साथ ही बड़ी पार्टियों से यह सवाल भी किया गया कि इस आधार पर उनकी पार्टी की मान्यता क्यों न रद्द कर दी जाए ?

लेकिन अब तक तो वह सब सम्पन्न हो चुका था जिसके लिये यह सब किया जा रहा था। गुप्ता साहब इलेक्शन के हीरो बन चुके थे। उनकी सदाशयता और फिराकदिली ही नहीं बल्कि उनके स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना सब कुछ खो देने वाले पिता का महान् पुत्र होने का भी ढिंढोरा पिट चुका था। गुप्ता साहब भी अपने इस यज्ञ को पूरे मसखरेपन के साथ स्वीकार कर रहे थे। नशे की पिनक में पूरी बेशर्मी के साथ अपने पूज्य पिता के झूठे किस्से हाहा-हीही करनेवाली भोलीभाली जनता के सामने परोस रहे थे। इस मसखरेपन को कौन रोक सकता था? यह तो उनका रक्त के साथ आया हुआ पैत्रिक अन्दाज था। अन्दाज पर किसका बस चलता है भला?

सचमुच में इस अन्दाज पर किसी का बस नहीं चला। इलेक्शन कमीशन का और न दशकों से राजनीतिक रोटियां सेक रहीं बड़ी-बड़ी पार्टियों का। सब पर किन्नरों का नाच भारी पड़ा और मतदान के दिन केवल गुप्ता साहब के ही खेमे पर भीड़ दिखी। भीड़ क्या दिखी जब परिणाम सामने आया तो गुप्ता साहब भारी गिनती से जीत गए घोषित किए गए।

जीत जाने के बाद केवल उनके जीत जाने के हलके में ही नहीं बल्कि उनके शहर में भी बिल्कुल वैसा ही जलूस निकाला गया जैसा कि गुप्ता साहब और उनके शिकारी मित्रों के निडर सिंह के शिकंजे से मुक्त होने पर निकाला गया था। पांचों शिकारी मित्र आज भी उसी तरह से ताजे फूलों के हारों से सजे खुली गाड़ी में खड़े थे. और उनके पीछे खड़े गुप्ता साहब के दोनों होनहार बेटे धर्मदास की तरह भीड़ के उठे हाथों में दो-दो लड्डू थमा रहे थे। इस जुलूस में एक बड़ी फौज किन्नरों की थी और किन्नरों के साथ उन सुन्दर सलौने युवकों की भी चल रही थी जो किन्नर बनने की इच्छा रखते थे।

उधर जुलूस निकल रहा था और इधर गुप्ता साहब की एकमात्र बेटी अर्चना गुप्ता कमला वर्मा के पास बैठी अपना दुखड़ा रो रही थी। वह बता रही थी कि गुप्ता साहब ने उसे अपने रक्त का अंश मानने से साफ इन्कार कर दिया है और साफ कह दिया है कि मैं अपनी चरित्रहीन मां की अवैध संतान हूं।

अर्चना ने यह भी बताया कि इससे दुखी होकर दादी मां ने यह रहस्य पहली बार खोला है कि गुप्ता साहब के पिता यानी कि अर्चना के दादा ने भी इसी तरह का लांछन दादी मां पर भी लगाया था और गुप्ता साहब को दादी की अवैध सतांन होना कह दिया था।

बात कुछ ज्यादा ही फिक्रमन्दी की थी क्योंकि आज के जमाने में बच्चों के खून और पिता के खून की डी. एन. ए टेस्ट करवाकर यह पता किया जा सकता है कि अमुक आदमी इन बच्चों का बाप है या कि नहीं। बाहर की संतान साबित हो जाने पर बच्चे को दिखाई दे रहे पिता की जायदाद से महरूम किया जा सकता है। फिर भी कमला ने अर्चना को दिलासा दिया कि इसको ज्यादा गंभीरता से लेने की जरूरत नहीं है। क्योंकि नशा उतर जाने के बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा। लेकिन इसके साथ ही कमला ने यह जरूर जानना चाहा कि यह विकट स्थिति आई ही क्यों?

इस सवाल का जवाब भी अर्चना ने सुबकते हुए ही दिया। उसने बताया कि मैंने और ममा ने पहले तो उनको इलेक्शन लड़ने से रोकने की कोशिश की। समझाया कि वे पहले से ही किडनेपरों की नजरों में हैं इसलिये अपने आपको सीमित ही रखें। पर वे नहीं माने। कुछ लोगों के बहकावे में आकर हमारे पुशतैनी गांव बुद्धू माजरा में चले गए। और फिर जीत जाने के बाद जब हम दोनों ने उन्हें जुलूस निकालकर अपराधियों की नजरों में न आने के लिये समझाना चाहा तो उन्होंने ममा और मेरे पर यह भद्दा इल्जाम जड़ दिया। कहा कि मेरी मां शकुन्तला देवी खानदानी प्रास्टीच्यूट है और मैं उसकी इल्लीगल संतान हूं। इसीलिये

तुम दोनों मेरी फेम और प्रोग्रेस से जलती हो बोलकर अर्चना और भी आवेग में आंसू बहाने लगी।

कमला ने उसे फिर समझाया, ''जब आदमी अपने शक्तिशाली वाहन के साथ ऊंचाई चढ़ रहा होता है तब उसके पास रुककर सोचने या किसी की बात सुनने का अवकाश ही नहीं होता। गुप्ता साहब ने यह भद्दा आचरण ऐसे ही हालत में इख्तियार किया है। मुझे विश्वास ही नहीं पक्का यकीन है कि आज नहीं तो कल वे अपनी इस गल्ती के लिये तुम्हारी ममा और तुमसे माफी मांगेंगे।''

पर अर्चना को तसल्ली नहीं हुई क्योंकि उसके दोनों भाई भी इस मामले में अपने पिता के साथ थे। उसने और भी ज्यादा बिसूरते हुए बताया कि दोनों भाई भी दिल से यही चाहते हैं कि मैं इल्लीगल साबित हो जाऊं ताकि खानदान की पूरी सम्पत्ति पर उन्हीं का कब्जा रहे।

कमला के लिये यह पहला अनुभव था क्योंकि समाज के जिस हिस्से से वह आई थी क्योंकि वहां तो ह्यूमन रिलेशनशिप की जरूरत से कुछ ज्यादा ही कद्र थी। उस समाज में राखी के त्यौहार को कुछ ज्यादा ही महत्व प्राप्त था जिस समाज में सम्पत्ति, धन, शोहरत और रुतबे के लिये मानवीय संबंधों की पूरी तरह से अवहेलना हो जाती है, उस समाज के बारे में उसका ज्ञान काफी बौना था। जब उसे पता चला कि कार तो अर्चना के नाम से खरीदी गई है तो उसे अच्छा लगा यह जानकर तो और भी तसल्ली मिली कि जिस कोठी में सारा परिवार रह रहा है वह भी टैक्स आदि बचाने के चक्कर में अर्चना की मां के नाम है, उसे एक तरह का सकून मिला। उसे यह सोचकर बहुत अच्छा लगा कि अगर झगड़ा ज्यादा बढ़ जाता है तो अर्चना और शकुन्तला देवी सड़क पर नहीं आ जाएंगी, जबकि उसने टीवी और अखबार को समाचारों में अक्सर देखा है कि पति के साथ पनपे किसी भी झगड़े में अन्ततः पत्नी और उसकी संतान को ही बुरे नतीजों का शिकार होना पड़ता है।

कमला ने प्रस्ताव रखा कि जब तक यह मसला गरम है तब तक वह उसके पास रह सकती है पर अर्चना ने यह कहकर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया ''रहने के लिये उसके पास उसके सर का काफी अच्छा घर है।'' दूसरे उसने कमला को यह एहसास भी दिया कि उसकी ममा इतनी कमजोर नहीं है कि उसे खरगोश की तरह दबोच लिया जाए। वह अपने मायके की तरफ से काफी मजबूत है। पापा इसलिये भी कोई ज्यादा बड़ा कदम नहीं उठा सकते क्योंकि उन्हें ममा की ताकत और औकात दोनों का पता है।

इसी समय मार्किट से घरेलू सामान खरीदकर लाजवंती घर चली आई और दोनों के बीच चल रही बातचीत बन्द हो गई । दोनों ही नहीं चाहती थीं कि यह कष्टदायक खबर मां तक पहुंचे क्योंकि दोनों जानती थीं कि पुराने जमाने के लोगों के लिये इज्जत से ताल्लुक रखने वाली हर खबर राई होते हुए भी पहाड़ की तरह होती है।

लाजवंती ने अर्चना को देखते ही प्रफुल्लता जाहिर की और उसे बाजार से लाई हुई ताजा मिठाई इस खुशी में खिलाई कि कमला की आगे बड़ी पढ़ाई करने की दी गई अर्जी मंजूर हो गई है और इसके लिये अब उसे महीने दर महीने खर्च करने के लिये पैसा भी मिलेगा।

''अरे, मेरे लिये तो सरप्राइज है यह।'' बोलकर अर्चना ने अपने स्वभाव का परिचय दिया खासतौर पर इस बात के लिये खुशी जाहिर की कि कमला की पीएच.डी. सरकारी खर्च के सहारे पूरी होगी और इस राशि के बल पर उसका अपना भी हाथ खुला रहेगा।

गुप्ता साहब को विधायक बने अभी एक मास भी नहीं हुआ था कि दो बदमाश मोटरसाईकिल पर आए और गुप्ता साहब को गोलियों से भूनकर फरार हो गए। पूरे शहर में सनसनी फैल गई पर राजनीतिक पार्टियों के हलकों में ज्यादा अफसोस जाहिर नहीं किया गया क्योंकि गलत तरीके से हथियाई हुई जगह अब उनके दंगल के लिये फिर खाली हो गई थी।

गुप्ता साहब के इस मर्डर पर तरह-तरह की अफवाहें उड़ चलीं। एक तो यह कि गुप्ता साहब को मरहूम निडर सिंह के आदमियों ने मरवाया है क्योंकि उनका कुछ रुपया गुप्ता साहब की तरफ बाकी था जो गुप्ता साहब ने वक्त पर नहीं चुकाया था। दूसरी यह कि इन्हें भेस बदलकर किन्नरों ने ही मारा है क्योंकि किन्नर समाज ने गुप्ता साहब के सामने विधान सभा में अपने लिये आरक्षण की मांग को रखने के लिये कहा था जिसे गुप्ता साहब ने सिरे से खारिज कर दिया था। तीसरी यह कि गुप्ता साहब को उस राजनीतिक पार्टी ने मरवाया है जिसका एक सदस्य गुप्ता साहब से पहले बुद्धू माजरा इलाके का एम०एल० ए. था। यह पार्टी बर्दाश्त नहीं कर सकी कि एक शराबी आदमी हिजड़ों को नचाकर उस पार्टी को गत्ता दे जाए और पार्टी को पूरे देश के सामने शर्मिन्दा होना पड़े। इन सबके अलावा एक विचार यह भी सुलग रहा था कि गुप्ता साहब की हत्या उनकी पत्नी शकुन्तला देवी और बेटी अर्चना गुप्ता ने करवाई है क्योंकि बड़े दिनों से इन दोनों का गुप्ता साहब के साथ झगड़ा चल रहा था जो इतना ज्यादा तूल पकड़ गया था कि इस हादसे का कारण बना। यह झगड़ा जायदाद को लेकर भी था जिसकी वजह से गुप्ता को जान से हाथ धोना पड़ा।

खैर पुलिस ने हत्यारों के ढूंढने से पहले गुप्ता साहब के परिवार से ही पूछताछ करने का फैसला किया। सबसे पहले गुप्ता साहब की धर्मपत्नी शकुन्तला देवी, उसके बाद एकमात्र बेटी अर्चना गुप्ता और इसके बाद दोनों बेटों को पूछताछ का आधार बनाया। मीडिया ने भी इस पूछताछ में गहरी रुचि दिखाई। न्यूज चैनलों पर तो इसकी खबरें आई हीं अखबारों में भी इसे तस्वीरों के साथ स्थान मिला। इस तरह से यह मुद्दा केवल राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लोगों की दिलचस्पी का वायस बन गया।

केवल गुप्ता परिवार के बड़े सदस्यों ही नहीं बल्कि इस मुआमले की तहकीकात से जुड़े छोटे-बड़े अफसर भी बयानबाजी करते हुए सामने आकर दर्शकों के मनोरंजन का खासा अच्छा साधन बने। पर अन्ततः यह कहावत ही चरितार्थ होती हुई नजर आई कि खोदा पहाड़ और

निकला शून्य। पूरी झांय-झांय के बाद आखिर एक अर्द्धविक्षिप्त आदमी पकड़ा गया जिसने पुलिस ही नहीं बल्कि मजिस्ट्रेट के सामने भी कबूल कर लिया कि गुप्ता साहब की हत्या उसने की है। उसने ऐसा क्यों किया है? यह सवाल एक विक्षिप्त आदमी से कैसे पूछा जा सकता है भला? इसके अलावा यह तो बाद में की जाने वाली खोजबीन का मसला है। लिहाजा पूरा मामला अब मीडिया से हटकर केवल कोर्ट के दायरे तक सीमित हो गया। भविष्य में कभी कोर्ट का फैसला आएगा तो मीडिया की फिर जरूरत पड़ेगी, एक साधारण खबर के लिये कि एक हत्या करना कबूलने वाले इस विक्षिप्त आदमी को पागलखाने भेजा गया या कि जेलखाने ओर कितनी सजा सुनाकर इसके बाद सारा किस्सा खत्म। पुलिस के लिये भी जनता के लिये भी और मीडिया के लिए भी। थोड़ा-बहुत रह जाएगा तो सिर्फ लेखकों के लिये भी और मीडिया के लिये भी जो रचनाएं लिखकर उन संवेदनशील पाठकों तक पहुंचाएंगे जिनकी आंखों का पानी ऐसे किस्सों की ही इंतजार में बैठा रहता है।

इस बीच दो वृद्ध विधायकों की भी स्वाभाविक मौत हो गई। अस्भाविक मौत को लेकर कुल तीन स्थान बने तो चुनाव आयोग ने इन तीनों स्थानों को भरने के लिये उपचुनाव करवाने का फैसला किया। छज्जूमाजरा क्षेत्र में फिर गहमा-गहमी बढ़ गयी लेकिन इस बार जनता के सामने एक बड़ी पार्टी ने गुप्ता साहब की एकमात्र बेटी अर्चना गुप्ता को उम्मीदवार बनाने का फैसला किया। जाहिर था कि यह सब जनता की भावुकता को भुनाने के लिये किया जा रहा था और लाभ मिला भी। अर्चना गुप्ता पार्टी की महिला सदस्यों के साथ सादा लिबास पहने घर-घर पहुंची और उसने जनता से एक दुखियारी बेटी को वोट देने की प्रार्थना की। प्रार्थना कबूल हुई तो अर्चना अपने मरहूम पिता से कई गुना ज्यादा वोट लेकर विजय का परचम फहरा गई और विधानसभा में सबसे छोटी लेकिन फर्राटे से अंग्रेजी बोलने वाली एक पढ़ी-लिखी महिला विधायक के रूप में उभरी। धन तो उसके पास था ही और ब्यूटी पार्लर जाने का उम्दा शऊर भी था, नतीजतन अर्चना मीडिया की भी चहेती नेता बन गई। लेकिन अपने सर के साथ सम्बन्ध उसने पहले की तरह ही बरकरार रखा और उपयोगी गाईडेंस वह उनसे लेती रही। किसी को इस पर ऐतराज भी नहीं हुआ। पिता समान गुरु के साथ किसी शिष्य का अगर कोई रिश्ता है तो उस पर किसी को क्या ऐतराज हो सकता है भला?

उठापठक ओर गहरी जोड़-तोड़ के बाद विधानसभा में पार्टी का बहुमत बना तो अर्चना के हिस्से में मंत्री पद भी आया और अर्चना शिक्षा मंत्री बन गई। पूरे सरकारी कालेज और सरकारी स्कूल उसके अधीन और मुख्यमंत्री के साथ भी उसके मधुर सम्बन्ध। उसके बुद्धू माजरा इलाके का भी भाग खुल गया, देखते ही देखते छोटे स्कूल अपग्रेड होने लगे और बुद्ध माजरा जैसे कस्बे में कालेज बन जाने की संभावनाएं बढ़ गई। इलाके के कुछ पढ़े लिखे युवकों को भी शिक्षा विभाग में रोजगार मिल गया और पार्टी द्वारा किये गए वादे के मुताबिक स्कूलों के बच्चों के मुफ्त किताबें और दोपहर का दूध मुफ्त मिलने लगा तो अर्चना गुप्ता अर्चना बहन बन गई और बड़ी उम्र के लोग भी दुखती कमर से झुककर उनके पैर छूने लगे।

इस सारे प्रगति के पूरे इतिहास से निपट कर एक दिन अर्चना को अपने पुराने साथियों की याद आई तो वह सरकारी गाड़ी में अंगरक्षकों कें साथ कमला के कटे हुए पेड़ों की तरह लगती कालोनी की तरफ चली। गाड़ी को उसी ऊंची जगह पर रुकवा कर वह हथियारधारी अंगरक्षकों को साथ पैदल चलकर कमला वर्मा के दरवाजे पर पहुंची। दरवाजा खुला तो मां सामने हथियारबन्द सुरक्षाकर्मियों को देखकर डर गई। अर्चना को पहचाना तो उसकी जान में जान आई।

सुरक्षाकर्मियों को बाहर रहने का आदेश देकर अर्चना जब छोटी खिड़कियों वाले कमरे में पहुंची तो कमला सो रही थी। पढ़ते-पढ़ते उसकी आंख लग गई थी कि पढ़ा जा रहा रजनीश कुमार का उपन्यास उसकी छाती पर पंख फैलाए परिन्दे की तरह खुला पड़ा था। लाजवंती ने बेटी को उठाया, ''उठो बेटी देखो कौन आया है!''

कमला ने आंखें खोलकर देखा पर उसे यकीन नहीं आया। उसको यह तो पता था कि अर्चना मंत्री बन गई है पर मंत्री बनकर वह इस तरह से आ धमकेगी यह उसने ख्वाब में भी नहीं सोचा था।

बिना कहे ही अर्चना खाली कुर्सी पर बैठ गई। कमला मानो आधी सोई आंखों से उसके चेहरे को देखने लगी। नींद आने से पहले पढ़े गए उपन्यास के अंश का खुमार अभी उतरा नहीं था। उस अंश में उपन्यास की नायिका श्यामा किस तरह से धार्मिक गुरु ओझा और इलाके के धनवान मुसटण्डे का फैलाया हुआ जाल काटती है और अपने सतित्व तथा अस्तित्व की रक्षा करती है यह बहुत ही प्रभावशाली ढंग से सामने लाया गया था। यह भी सामने लाया गया था कि श्यामा जनशक्ति का संगठन करके किस तरह से जनविरोधी शक्तियों का मुकाबला करती है और अन्त में विजय का वरण करती है।

अर्चना ने पूछा, ''व्हट आर यू लुकिंग माई डियर?''

देख रही हूं कि तुम वही अर्चना हो कि कोई और। कमला ने जवाब दिया!

''व्हट आर यू सेईंग?'' बोलकर अर्चना खुलकर हंस पड़ी।

''तुम पहले से कहीं ज्यादा सुन्दर हो गई हो। आंखों में पहले से कहीं ज्यादा तेजस्विता है। इस सादे लिबास में तुम बहुत आर्कषक लग रही हो।'' कमला ने रसीली आवाज में मानो उसके प्रति स्नेह का भाव दिखाया।

अर्चना इस हद तक प्रभावित हुई कि वह कुर्सी से उठकर खाट पर आ गई और उसने कमला को अपनी बाहों में कसकर उसके अर्द्धनिद्रित मुख पर कई चुम्बन जड़ दिये।

कमला का चेहरा गुलाबी हो गया। वह हंसकर बोली, ''क्यों न हम दोनों आपस में विवाह कर लें!''

''आई एक्सैप्ट इट।'' बोलकर अर्चना ने कमला की गालों पर कुछ और चुम्बन जड़ने के लिये मुंह आगे बढ़ाया तो कमला ने दोनों हाथों से शर्माती दुलहन की तरह अपना चेहरा ढक लिया। इसी समय मां प्लेट में मिठाई लेकर आ गई, ''लो बेटा इसे खाओ। रवि नाभा से लेकर आया है। गाजरपाक बहुत मशहूर है इस शहर का, लो चखो।''

अर्चना ने प्लेट से एक पीस उठा लिया और उसे कुर्सी पर बैठकर धीरे-धीरे कुतरने लगी।

प्लेट कमला के पास रखकर लाजवंती चाय लेने चली गई। कमला ने भी प्लेट से एक पीस उठा लिया तो अर्चना ने उसे कहा, तुम सरकारी नौकरी करना चाहोगी?

कैसी नौकरी? अर्चना की चेतना जागृत हो गई।

यही अध्यापिका की या किसी सरकारी कालेज में हिन्दी प्राध्यापिका की।

''कौन देता है नौकरी!'' कमला ने दीवार पर लगी तस्वीरों की तरफ देखा।

''मैं देती हूं।'' अर्चना ने गर्दन तानकर कहा।

कमला उसकी तनी हुई गर्दन की तरफ देखने लगी कुछ महीने पहले इसी कमरे में सुबकती लड़की में आज कितना आत्मविश्वास था और कितनी उत्तेजना। उसके मुख से निकल गया, ''भीख में तो स्वर्ग भी कबूल न करूं।''

अर्चना तड़पी, ''भीख काहे की पगली, यह योग्यता के लिये संसीयर ऑफर है। और फिर एक सिस्टर दूसरी सिस्टर को कुछ देती है तो वह भीख कैसे हो गई?''

''तुम अगर मेरे लिये कुछ करना चाहती हो तो मुझे दलित विश्वविद्यालय बनाने में मदद करो'' कमला ने कहा।

''वह भी हो जाएगा।। यह एक लम्बा प्रोसेस है बनते-बनते ही बात बनेगी। फिलहाल तुम सरकारी नौकरी के जरिये मेरे साथ आओ और फिर देखेंगे कि क्या करना है।'' अर्चना ने कुर्सी उसके पास खिसकाकर उसे धीमी आवाज में समझाया मानो बहुत ही गोपनीय बात कर रही हो।''

कमला ने भी धीमी आवाज में ही पूछा, ''इसके लिये मुझे क्या करना होगा?''

''कुछ भी नहीं अपने हाथ से एक एप्लीकेशन लिखनी होगी और अपने सभी सर्टीफिकेट्स की एक-एक फोटोकापी उसके साथ अटैच करके मुझे देनी होगी।''

''कब तक करना होगा यह सब?''

''शुभश्य शीघ्रम।'' अर्चना ने शायद पहली बार संस्कृत का उपयोग किया था। ''दो दिन बाद मेरा आदमी आएगा तुम्हारे पास यह सब लेने, तुम न भी हुई तो मां जी से हासिल

कर लेगा । फिर मैं जानूं मेरा काम जाने।''

कमला का गला भर आया। अर्चना ऐसी निकलेगी उसने तो किसी भी शक्ल में नहीं सोचा था।

मां चाय लेकर आ गई। अर्चना ने दो घूंट पीकर कमला के गाल को फिर चूमना चाहा पर कमला के चेहरे के भाव को देखकर हंस पड़ी ''तुम्हारी एप्लीकेशन मिलने के बाद ही मैं सी.एप. महोदय से बात करूंगी।'' बोलकर उसने मां को नमस्कार किया और कमरे से बाहर निकल गई।

कमला अपनी चप्पलें ढूंढकर जब तक बाहर आई तब तक अर्चना अपने अंगरक्षकों के साथ गली पार कर चुकी थी। अपनी चुन्नी ढूंढकर जब तक वह ऊंची जगह तक पहुंची तब तक अर्चना अपनी झंडे वाली सफेद कार में बैठकर दो पुलिस कारों से घिरी गोल चक्कर काट रही थी। उसे लगा जैसे सफेद कार के बाहर एक हाथ हिल रहा था, शायद अर्चना का ही हाथ था।

शोधपत्र के लिये स्वीकृति मिल जाने के बाद कमला अध्यक्ष महोदय को धन्यवाद देने यूनिवर्सिटी के विभाग पहुंची तो उसे अध्यक्ष महोदय के पते पर अपने नाम आया एक लिफाफा मिला। लिफाफे में खत हरप्रीत कौर का था। यह खत मुंबई से आया था और देवनागरी लिपि में पंजाबी भाषा में था। कमला ने उसे विभाग की बिल्डिंग से बाहर आकर पढ़ा, लिखा था -

आदर जोग भैन कमला जी, मैंने तां उडारी ऐस वास्ते मारी सी कि समंदर पार करके नवीं दुनियां देखांगी पर जा डिगी इक्क गन्दे नाले विच्च। ऐथे तां कीड़े ही कीड़े हन जो इक्क-दूजे नूं नोच-नोच के खा रहे हन। किस्मत ने मैनू एहोजही मार मारी है कि मैं बिना ब्याही मां बनके अपने बच्चे नूं गोद विच्च चुक्कीं भिखारिन वांग दर-दर भटक रही हां। काश मैंनू आप जी दी संगत दा कोई सुनेहा सुनया हुन्दा तां मेरी एहोजेही हालत न हुंदी। बच्चे दा बाप मैंनू सिसकती छड्ड के दुबई चलया गया। बाद विच्च पता लगेया कि ओ ओथोंई आया सी। समझ नी आन्दा कि ऐडे बड्डे पत्थर दिल शैर विच्च हुन मेरा ते मेरे इस मसूम बच्चे दा की होवेगा। आपजी दी करम जली भैन, हरप्रीत कौर।

नीचे लिखा पता था जो किसी गुरुद्वारे के भाई जी की मार्फत का पता था।

पढ़ते ही कमला को रोना आ गया। इस तरह की कुन्दन जैसी लड़की और इतनी बुरी हालत, रोने के साथ ही उसे गुस्सा भी आने लगा, फिल्मों की इस ग्लैमर से भरी दुनिया पर जिस में हाथी के दांत खाने के और दिखाने को और। जहां पर हर पैसे वाला रंगा हुआ सियार। एक ऐसा नखलीस्तान जो हसरतों के रेगिस्तान भटकते नौजवानों को अपनी तरफ खींचता है और फिर नशेड़ी बनाकर जिन्दगी के रेगिस्तान में भटकने के लिये दुत्कार देता है।

कमला ने हरप्रीत को तुरन्त पत्र लिखा, प्यारी बहन हरप्रीत कौर, तुम्हारा खत पढ़ा, बड़ी तकलीफ हुई। तुम्हें किसी भी तरह की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। जो कुछ तुम्हारे साथ घटा है उसे बुरे सपने की तरह भूल जाओ और फौरन चंण्डीगढ़ का टिकट कटाकर यहां चली आओ। मत भूलो कि चण्डीगढ़ में तुम्हारी बहन और मां रहती है। एक भाई भी है जो बहनों से प्यार करना जानता है। हम सब तुम्हारा और तुम्हारे बच्चे का बड़ी ही बेसब्री के साथ इंतजार कर रहें हैं।

और हां अगर तुम्हारे पास टिकट के लिए पैसे नहीं हों तो रवि वर्मा के नीचे लिखे मोबाइल नम्बर पर फोन करो, हम तुम्हें पैसे तार से भेज देंगे और यह भी जरूर बताना कि पैसे किस पते पर भेजें। मै विश्वास दिलाती हूं कि यहां तुम्हें हर तरह से आदर, सुरक्षा और प्यार मिलेगा। तुम्हारी बहन, कमला वर्मा।

नीचे कमला ने अपना घर का पता और रवि वर्मा का मोबाइल नंबर लिखा और पत्र फौरन मार्किट में जाकर पोस्ट कर दिया।

बाद में कमला ने मां से पूछा, ''मां अगर मैं आपको बिना बताए कहीं से अपने साथ एक बच्चा लेकर आ जाऊं तो आप मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगी?''

मां ने झिड़का, ''होट डुपपैनी, कैसा सवाल कर रही है तू?''

बेटी ने लाड़ लड़ाया, ''बस यूं ही कर रही हूं। आपके विचार जानने के लिये। आप बताये ना मां।''

''कैसा विचार, किस तरह का विचार।'' मां ने बेटी को पास खींचकर उसका पेट टटोला।

''नहीं नहीं, ऐसा कुछ नहीं है मां, तेरी बेटी ऐसी मूरख और भावुक नहीं कि अपनों के सम्मान का भी ख्याल न रख सके।''

''मैं जानती हूं, मैं जानती हूं।'' बोलकर मां ने बेटी के सिर पर एक हल्का-सा चुम्बन सहलाया और बेटी को बांहों में कस लिया।

''तो फिर बताओ ना। बताओ ना मां अगर मैं बच्चा लेकर आ जाऊं तो?''....

मां बोली, ''बेटियां चाहे किसी भी रूप में हों, मां के दिल का टुकड़ा ही रहती हैं। पर तू यह.....''

''बस यूं ही पूछ रही थी। आश्वस्त होकर मां के साथ और भी ज्यादा एकमेक हो गई। पर मां उसे छोड़ एक झटके के साथ उठ खड़ी हुई, हाय मैं मरजां, दाल तां कोला हो गई होगी।'' बोलकर मां रसोई की तरफ भागी।

सचमुच में दाल के जलने की बदबू दरवाजा खुलते ही कमला तक भी पहुंची। वह भी

मां के पास रसोई में पहुंच गई। कुकर से उड़ते सड़ी दाल के धुएं से पूरी रसोई भरी थी। और वह मां उसमें खड़ी बुरी तरह से खांस रही थी। स्टोव तो बन्द हो चुका था पर कुकर को ठण्डा होने में अभी वक्त लगना था। कमला मां को सहारा देकर घर से बाहर ले गई। बाहर की ताजी हवा मिली तो मां को चैन की सांस आई।

अब बेटी ने मां को पानी का गिलास दिया और प्रण लिया कि आज से वह मां को रसोई में कम से कम जाने देगी। पर प्रण के साथ एक सवाल भी उठा, इस वक्त तो ठीक है, इस प्रण को निभाया जा सकता है लेकिन जब नौकरी पर जाना पड़ा तो? पर यह सब तो अभी दूर था। मन में उठती संभावनाओं से भी कहीं दूर।

कमला ने एक परम्परागत सोच का सहारा लिया, हमारे जैसे हर घर की यही कहानी है, और इस सोच ने उसे काफी तसल्ली दी।

o

समीक्षा

हलीम आईना का सशक्त व्यंग्य लेखन

❑ सुनील शर्मा

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में व्यंग्य साहित्य सरल भाषा के माध्यम से पाठकों के दिलों में एक विशिष्ट स्थान ग्रहण कर लेता है और अपनी लोकप्रिय शैली द्वारा समृद्ध लेखन के एक सशक्त हस्ताक्षर हलीम 'आईना' हैं जो अपने रचना संसार के माध्यम से पाठक वर्ग को निरंतर हंसाते तो रहते ही हैं पर इससे भी अधिक वह समसामायिक, ज्वलंत समस्याओं और घटनाओं से अवगत कराते हैं। वह जागरूकता की मशाल को समाज की अंधेरी गहरी गलियों में जलाए रखने का बीड़ा उठाये हुए हैं।

''जर्दा नहीं खाऊंगा'' कविता में जो अध्यापक अपने ही छात्रों से जर्दा मंगाकर खाते हैं वही उनको जर्दा न खाने के बारे में उपदेश देते हैं, उदाहरणतया

जर्दा बुद्धि का अपहरण करता है
काया की कांति हरता है
अंदर की चमड़ी गलाकर
कैंसर बनाता है
बिना टिकट के स्वर्गधाम पहुंचाता है

इतने ज्ञानी होकर भी आश्चर्य है, आप जर्दा खाते हैं, शर्म नहीं आती अपने चेलों से जर्दा मंगवाते हैं।''

चेले का उपदेश सुनकर अंततः अध्यापक जर्दा खाना छोड़ देते हैं।

''हमने अक्सर पुतले फूके जीवित रह गये रावण
हर दानव की खाक उड़ाएं, ईद, दिवाली, होली''

उपर्युक्त शेर में आईना ने बुराई के महज प्रतीकों के ही अग्नि के भेंट करने की बात की है जबकि आतंक के राक्षस अब भी खुले आम घूम रहे हैं पर लेखक ईद, दिवाली, होली के माध्यम से अंततः हर दानव के भस्मोभूत होने की खुशफहमी से आश्वस्त हुए प्रतीत होते हैं। पर विरोधाभास के चंगुल से बचने में असमर्थ हुए लगते हैं और आशावादिता में सपूर्ण

* *Dogri, Hindi Writer, 201/3, Channl Himmat, Jammu, Mobile-9796006675*

विश्वास रखते हुए, आखिरकार बुराई पर अच्छाई की जीत होती है का नारा बुलंद करते हुए शेर की विषयवस्तु के साथ पूरा न्याय करने में धर्मसंकट अथवा दुविधा के तराजू पर खुद को टिका पाते हैं। ऐसा अक्सर हर उस साहित्यकार के साथ होना अनिवार्य सा प्रतीत होता है जो अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को सुधारने में जुट जाते हैं।

आवश्यक चिंतन के लिये लेखक को अक्सर ईमानदारी और निर्भीकता के पैमानों पर खरा उतरना चाहिए। पर तत्काल प्रस्तुति अथवा फास्ट फूड के मायाजाल से बचे रहने में ही धीमी धीमी आंच में पका स्वादिष्ट भोजन काफी समय तक स्वाद की कंदराओं में महफूज़ रहता। आईना को अधिकांश रचनाओं में प्रखरता गुण हैं कौओं की कानाबाती कविता में लेखक ने अपनी रचना प्रक्रिया के जौहर दिखाए हैं और शब्दों को सही मायनों में जीवादान दिया है

उदाहरण देखिए

माना कि हम कौए मरे हुए ढोर-डंगर का
मांस नोच-नोच कर खाते हैं
किंतु इंसान की भांति मृत्यु-भोज के
नाम पर पकवान तो उड़ाते नहीं हैं

हिंदू कौआ और मुस्लमान कौआ दल शपथ लेते हैं कि

मंदिर मस्जिद के नाम पर
जब तक आदमी लड़ता रहेगा
इंसानी हाथ से बना
कुछ भी नहीं खायेंगे
चाहे भूख से मर जायेंगें

लेखक की यह रचना आम बोलचाल की भाषा में होने के बावजूद उपदेश देते हुए भी, उपदेश देने और उपदेश न देने के महीन फासले को बचाते हुए पाठकों के दिलों को छू जाने वाली रचना है।

हास्य व्यंग्य लेखन देखने में तो एक सरल कार्य प्रतीत होता है परंतु श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य लेखन के लिये शब्दों के सटीक प्रयोग और रचनाधर्मिता को निभाने के लिये जो गुण, लक्षण एक साहित्यकार में होने चाहिए वह सामर्थ्य हलीम आईना की रचनाओं में विद्यमान है।

हंसी को गोलगप्पों से आईना पाठकों को कई खट्टे-मीठे अनुभवों से परिचित करवाते हैं और इनका कुछ तीखापन कुछ पकी हुई अभिव्यक्ति की लाल मिर्च से समाज की कुंठित सोच को झंकोर देता है और समाज की काया में सिहरन सी दौड़ा देता है।

हंसो भी हंसाओं भी काव्य संग्रह में तकरीबन तकरीबन सभी कविताएं सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों को लेकर रची हुई हैं और लेखक ने मानवीय संवेदनाओं को उजागर कर चेतना की परिपाटी पर खरा उतरते हुए, आजकल के भटक भरे जीवन में पनपती कुरितियों पर अचूक प्रहार कर सराहनीय कार्य किया है।

आजकल लेखक में सतही सोच से बच बचाकर निकलने की चतुराई होनी आवश्यक है और सृजनात्मक क्षमता ही कवि को लोकप्रिय बना सकती है और पैनीधार वाली पाठकों की पारस दृष्टि से गुजरकर क्रंदन बनकर श्रेष्ठ रचना ही उत्कृष्ट साहित्य की श्रेणी में स्थान पा सकती है। हलीम आईना की रचनाएं भी पाठकों की दृष्टि से गुजरती रहती है और मेरी दृष्टि में कुछ कुछ आभूषण पहनकर श्रृंगारित हैं। एक समर्पित कवि बनकर लेखक ने रचनात्मकता एवं चिंतन को बड़ी सावधानी से सामाजिक सरोकारों से जुड़े प्रश्नों को समाज के समक्ष रखा है और समाधान करने का साहस भी किया है जो शायद बदलते समय में घिसी पिटी चली आ रही रूढ़िवादिता पर एक और चोट है या प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कविता को पाठकों से हल किये हुए प्रश्नों का मूल्यांकन करवाने का प्रयास है।

यह तो मैं पाठक वर्ग पर छोड़ता हूं। कविता का स्वरूप भी समाज के बदले स्वरूप की ही 'मिरर इमेज' है और यह प्रतिबिम्ब किस प्रकार एक रंग भरी तस्वीर की भांति उभरकर सामने आता है और इसे समाजरूपी प्रदर्शनी में कितने लोग सराहते हैं यही कविता का सही मायनों में मूल्यांकन होता है।

हास्य व्यंग्य लेखन इस्टेंट लिटरेचर का वो रूप है जो स्वत: ही हंसी के फवारों में परवर्तित हो जाता है और पाठक वर्ग का हंसी में लोटपोट होना या हंसी के पीछे छुपी ऊर्जा जो सकारात्मक सोच और दिशा निर्धारित करते हुए समाज को ज्ञान का पाठ न पढ़ाकर विचार और बौधिकता के लैक्चर न देकर कल्पना की सूक्ष्म पुष्पवाटिका में से सुगंध चुराकर लुप्त होती मधुरता और गर्माहट बचाकर मानवता को नवीनतम धुरे प्रदान करे ऐसे कवियों की अत्यंत आवश्यकता है।

जैसे बच्चा अपने घर में हो रहे लालन-पालन से निखर कर, उभर कर जवान होता है जिस प्रकार के गुण, मूल्य और आदर्श उसे घर में मिलते हैं। उसी प्रकार की खुश्बू उस फूल में बसती है जिस प्रकार की खुश्बू उसे उस घर में स्वत: ही उसे सुरभित कर देती है। कविता भी कुछ ऐसे ही पनपती है। अपने समय के समाज की पहचान करवाते हुए उसको अंतर्निहित पाप, पुण्य, सत्य, झूठ, चोरी-चकारी, गुण दोष को शब्द देती है और इस अभिव्यक्ति में सृजनशीलता और कलात्मकता जब कविता में अनायस कमल की भांति शब्दों के मायाजाल के कीचड़ भरे पोषण में से निकलकर खिल जायें तो कविता सार्थक हो जाती है।

हलीम आईना की कविताएं भी कमल का रूप है जो अपने रंगों से समाज की आंखों में चमक भी भरते है और बेरंग आंखों में सपनें भी। लोकतंत्र में पनप रही कुरीतियों से

समाधान करवाने का बीड़ा उठाना ही बेरंग आंखों में सपनों के रंग भरना है।

हलीम आईना की सोच दूरदर्शी है। और वह अपनी दूरदर्शिता की दूरबीन से कई बारीक से बारीक मसलों को अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के सामने उभरते हैं और यथार्थ की आंखों को खुला रखकर, अंधविश्वासों की पट्टी हटाकर, डर के दानवों को मलियामेट कर जीवन के सत्य से साक्षात्कार करवाते हैं और सौंदर्य बोध और संवेदन के नये पैने औज़ारों से नई कविता की अद्भुत इमारतें बनाते हैं। अपने समय की जटिलताओं के प्रभाव में रहकर कविता रचना, अपने समय में रहते हुए समकालीन आधुनिक समकाल से परिचित होना और फिर प्रखर हास्य व्यंग्य का सृजन करना अत्याधुनिक विधाओं के निभाते हुए वह भी सरलता से, ऐसा कार्य केवल कुछ ही कवि कर पाते हैं कि और हलीम आईना इसमें निपुण हैं इनके सम्मोहन में व्यक्ति अवश्य ही समोहित हो जाता है और सोचने पर मजबूर हो जाता है और इनकी कविताओं की यही उपलब्धि है। इनके विषयों की विविधता से इनकी बुद्धिमता, संवेदनशीलता और उत्कृष्टता दृष्टिगोचर होती है और यह अपनी हर कविता में कुछ नया करने में तत्पर रहते हैं और हर बार कुछ नया परोसकर ज़ायका बदलते रहते हैं। मैं इनके ताज़े ज़ायकेदार कुरकुरे गोलगप्पे खाकर प्रसन्नचित्त हूं।

o

समीक्षा

"गाँधी और उनका वर्धा" : पी. एन. सिंह की दृष्टि में

❑ मुहम्मद हारून रशीद खान

मार्क्सवादी विचारक एवं समीक्षक डॉ० पी०एन० सिंह की कृति "गाँधी और उनका वर्धा" (प्रतिश्रुति प्रकाशन, 72A बैन्टिक स्ट्रीट, कोलकत्ता-70001; मूल्य रु. 300/-2012)अजीब सा एहसास देती है। पहले तो मुझे लगा कि इसमें गाँधी की मात्र आलोचना होगी, लेकिन पढ़ने पर यह लगा कि डॉ०सिंह गाँधी के प्रति उदार हैं और वर्धा के प्रति गाँधी अस्तित्व की प्रतीकात्मक उपस्थिति की भावना के साथ किसी सीमा तक मोहग्रस्त भी। यह पुस्तक उनके ज्ञान को रेखांकित करती ही है, अनुभव संसार को भी बेहद रुचि एवं संलग्नता के साथ उद्घाटित करती है।

यह पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में गाँधी पर निबंध है; दूसरे खण्ड में लेखक के अनुभवों में आये गाँधी तथा तीसरा खण्ड वर्धा दर्शन है जिसमें लेखक हेमचन्द्र वैद्य और डा० अनिल कुमार दुबे के साथ सेवाग्राम, पवनार इत्यादि जगहों पर आता जाता रहा।

पहले खण्ड के निबंधों में गाँधी को एक ऐसे महापुरुष के रूप में देखा गया है जिसमें राजनीतिक गाँधी अपने राजनीति का अतिक्रमण करते हैं। लेखक के अनुसार गाँधी अपने राजनीतिक प्रयोगों के माध्यम से धीरे-धीरे गौतम बुद्ध, सुकरात, जीजस के सहधर्मी महामानव बनते हैं (पृ०16)। यहाँ तक कि राहुल सांकृत्यायन भी अंततः इलाहाबाद में संगम पर गाँधी राख के छिड़काव के लिए उमड़े जनसैलाब को देखकर अभिभूत हो उठे और यहाँ तक कह डाला कि गाँधी ने मानव मुक्ति के लिए गौतम बुद्ध से भी अधिक कष्ट सहा है (पृ०16)। वैसे तो इतिहास शहीदों से भरा पड़ा है। लेकिन डॉ० सिंह के लिए केवल चार शहीद ही यादगार संदर्भ है-सुकरात, जीजस, महात्मा गाँधी और मार्टिन लूथर किंग। लेखक के अनुसार अगर गाँधी को चुनना ही होता तो वह मृत्यु को चुनते और जीजस की तरह अपने हत्यारे को क्षमा कर देते। डॉ० सिंह की दृष्टि में गाँधी कई एक मोर्चों पर लड़ रहे थे। साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने संघर्षों के साथ ही कठमुल्ले हिन्दुओं से भी जो मुसलमानों को राष्ट्रीय शत्रु मानते थे। इतना ही

---

* पता : मुहल्ला-खजुरिया, पो० पीरनगर, जिला-गाजीपुर 233001 (उ०प्र०); 9889453491

नहीं, वे मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक राजनीति से असहमत थे। उनका साबका उग्र दलित राजनीति से भी था। जो दलित राजनीति को स्वतंत्रता संग्राम की मुख्यधारा से पृथक करना चाहते थे। वह सवर्णों के सामाजिक दुर्जनता के विरुद्ध भी खड़े थे.....'(पृ 19)।

इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने गाँधी के दांडी मार्ग को बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है-'ऊपर से सपाट दिखने वाला गाँधी एक ही साथ अनगिनत दिशाओं में संवेदनशील था' (पृ 20)।

इरफान हबीब ने भी गाँधी पर अपने निबंध में लिखा है कि गाँधी की पोशाक और भाषा को देखकर कोई भी जल्दबाजी में गाँधी के बारे में बात करना बड़ी भारी भूल है। उनकी दृष्टि में गाँधी ने देश को 'अभय का मंत्र' तो दिया ही 'सबै भूमि गोपाल की' का भी मंत्र दिया है। इस तरह वे मार्क्स के विचारों के नजदीक हैं। गाँधी ने यह भी कहा था कि 'सामान्यतया व्यक्ति प्रवृत्तिजीवी होता है, मैं चाहता हूं कि वह संकल्पजीवी बने' (पृ० 25)। जार्ज आरवेल जो गाँधी की सीमाओं को रेखांकित करते हैं वह भी कहते हैं, वर्तमान अमेरिकी सेक्युलर जेहाद और प्रतिक्रियात्मक इस्लामी जेहाद के इस खूनी दौर में गाँधीवादी सत्याग्रह ही विकल्प है।

पुस्तक का दूसरा निबंध क्या गाँधी हमारे किसी काम के नहीं? अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं। इसके आरंभ में डॉ०पी०एन० सिंह ने आइन्सटीन, सुभाषचन्द्र बोस, मानवेन्द्र राय, जवाहरलाल नेहरू, रामगनोहर लोहिया इत्यादि को उद्धृत करते हुए दलितों के गाँधी-विरोधी दृष्टि पर रोशनी डालते हैं और अंततः वे गाँधी को उद्धृत करते हैं यह बताने के लिए कि गाँधी राजनीति के सर्प से इसलिए लड़ रहे थे कि उनके लिए कोई दूसरा विकल्प नहीं था-

> 'मेरे अंदर के राजनेता ने मेरे एक भी निर्णय को प्रभावित नहीं किया है। अगर मैं राजनीति में हिस्सा लेते दिखता हूँ तो मात्र इस कारण कि राजनीति सर्प की कुंडली की तरह सबको लपेटे हुए है, जिससे किसी का भी निकल पाना असंभव है चाहे कोई कितना भी कोशिश करे। इसलिए मैं इस सर्प से लड़ना चाहता हूं और सचेतन 1894 से ही कमोबेश सफलतापूर्वक लड़ रहा हूं और मैंने पाया कि अवचेतन रूप से तभी से होश सँभाला' (पृ 30)।

इतना ही नहीं गाँधी का रचनाधर्मी व्यक्तित्व धर्म के मुद्दे पर अतिशय सावधान था। उनके अनुसार-

> 'जहाँ तक धर्म की बात है... मुझे अपने पैतृक धर्म तक ही सीमित रहना

है। मेरे तात्कलिक धार्मिक परिवेश का यही उपयोग है। अगर मैं इसमें कुछ दोष पाता हूँ तो इसके दोषों को दूर करता हुआ इसकी सेवा करूँगा। राजनीति के क्षेत्र में मुझे देशज संस्थाओं का उपयोग करना है और उनके सिद्ध दोषों को दूर करते हुए उनकी सेवा करनी है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मुझे उन्हीं वस्तुओं का उपयोग करना है जो मेरे पास-पड़ोस में तैयार की जाती हैं और अगर उन उद्योगों में कोई कमी है तो कार्यकुशल और पूर्ण बनाते हुए उनकी सेवा करनी है' (पृ० 37)।

इस तरह गाँधी जी की राजनीति किसी से टकराहट की नहीं थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'माइ रिलीजन अंडर लाइज आल रिलीजन्स' इस तरह उनका धर्म की जड़ताओं का विरोधी और विकासमान है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि भारतीय समाज में जातीयता की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उतार फेकना संभव नहीं हैं इसलिये उन्होंने 'इन्हें उखाड़ फेंकने की तुलना में इन्हें सुधारने पर बल दिया।' इतना ही नहीं, अपने को सनातन हिन्दू बताते हुए 1921 में उन्होंने यह भी कहा था कि 'मैं एकमात्र वेदों के देवत्व में विश्वास नहीं करता..... हिन्दू शास्त्रों में मेरा विश्वास मुझसे यह अपेक्षा नहीं रखता कि मैं उनके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक कविता को दैवीय मानकर स्वीकार कर लूँ..... मैं किसी एक व्याख्या को, जो मेरे तर्क और नैतिक विवेक के विरुद्ध हो, मानने के लिए बाध्य नहीं हूँ, चाहे वह जितने भी विद्वानों की व्याख्या हो' (पृ० 43)। जवाहरलाल नेहरू ने भी जो बहुत दूर तक गाँधी से असहमत थे ने कहा कि गाँधी संसार के सामान्य सिक्के नहीं हैं...वे अपने शब्दों से बड़े हैं। अत: केवल उनके लेखन के आधार पर उनका मूल्यांकन ठीक नहीं है। नेहरू का यहाँ तक सोचना था कि ऐसा मालूम होता था गाँधी के आँखों के पीछे से कोई अव्यक्त अनजानी शक्ति झांक रही है'(पृ० 73)।

डॉ० रामविलास शर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'गाँधी, अम्बेडकर, लोहिया' और भारतीय इतिहास में गाँधी के सत्याग्रह और अहिंसा की राजनीति की आलोचना की है। इतना ही नहीं, उनका यह भी कहना है कि 1942 का आंदोलन गाँधी के हाथ से निकल गया था। और 1946 का आंदोलन वह पहला आंदोलन था जिसकी शुरुआत भी गाँधी या कांग्रेस ने नहीं की थी'(पृ 95)। परिवर्तन में उनका संपूर्ण विश्वास बेईमानी साबित हुआ है। इतना ही नहीं, डॉ० शर्मा के अनुसार 1946 तक आते-आते गाँधी को इतिहास ने अतिक्रमित कर दिया था। इन सबके बावजूद डॉ० शर्मा ने गाँधी के अवदानों की चर्चा की है। डॉ० शर्मा का मानना हैं कि गाँधी की पुस्तक दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह इतिहास एक विशिष्ट कलाकृति है। इतना ही नहीं, गाँधी जी की विपुल साहित्य, संगीत और कलाकृतियों में भी अद्‌भुत रुचि थी। रामचरित मानस की प्रतिकात्मक आध्यात्मिकता पर बल देते हैं और उनके अनुसार गाँधी जी तुलसी दास

की ज्ञानपूर्वक स्त्री जाति के निंदक नहीं थे। ज्ञानपूर्वक स्त्री जाति के पुजारी ही थे (पृ०104)।

इस तरह रामविलास जी ने गाँधी की आलोचना करते हुए भी उनकी व्यक्तिगत रुचियों के सौन्दर्य एवं अर्थवत्ता का अच्छा निरूपण किया जिसे राजकिशोर का 'पहला गिरमिटिया' नहीं कर सका था।

इसके बाद डॉ० सिंह वर्धा में अपने अनुभवों की ओर मुड़ते हैं। उनके लिए वर्धा में चार चीजें अपनी पहचान की हकदार हैं– सेवाग्राम, हिन्दी राष्ट्रभाषा समिति, पवनार आश्रम और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय।

डॉ०पी०एन० सिंह वर्धा में केवल अध्यापक ही नहीं थे वे एक अच्छे दृष्टि सम्पन्न पर्यटक भी थे। पहली ही शाम उनकी मुलाकात विद्वान प्रोफेसर रणसुहे से हुई और उनकी महाराष्ट्र संबंधी कथनी और करनी में अंतराल देखा। डॉ० सिंह रणसुहे की इस टिप्पणी से इंकार करते हैं कि हिन्दी क्षेत्र में महाराष्ट्र से दलित संदर्भों में बहुत पीछे है। डॉ० सिंह के अनुसार मराठी ब्राह्मण और मराठी दलितों में गैर मराठी लोगों के प्रति दृष्टि में कोई अंतर नहीं है। विश्वविद्यालय की कक्षा में बच्चों ने बताया कि दलित लेखक शरण कुमार लिम्बालो और नेमिश राय कक्षा में केवल दलितवाद बतियाते रहते हैं और उनमें तटस्थ आकलन-मूल्यांकन की क्षमता नहीं दिखती। डॉ० सिंह ने अशोक वाजपेयी के लालफीता शाही की भी चर्चा की है।

इस पुस्तक में बेहद खूबसूरत निबंध है 'गाँधी और टैगोर' जिसमें अपनी परिस्थिति विशेष में लेखक गाँधी को स्वीकारता है न कि रवीन्द्र को। लेखक की दृष्टि में 'रवीन्द्र विचारक हैं, गाँधी विचारक और अपने विचारों की योद्धा में।' रवीन्द्र सुन्दर हैं, गाँधी उदार हैं। रवीन्द्र महापुरुष, गाँधी महामानव.....गाँधी की शक्ति उनके विवेक और सामाजिक संघर्ष के समन्वय में है, रवीन्द्र नाथ की शक्ति उनके विवेक शब्दानुसार और स्वरानुशासन। एक विचार और विवेक का यह योद्धा है, दूसरा विचार और विवेक का गायक।' (पृ० 88-89)

पुस्तक का दूसरा खंड 'महात्मा गाँधी का वर्धा अनुभवों के आईने में' बेहद खूबसूरत और दृष्टि सम्पन्न निबंध है। दरअसल, यह लेखक के वर्धा के अनुभवों का खूबसूरत और प्रभावशाली अंकन है। लेखक की पहली मुलाकात दलितवादी प्रोफेसर रणसुहे से होती है, जिन्होंने महाराष्ट्र की सांस्कृतिक आंदोलन की चर्चा की। और कहा इस दृष्टि से महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश से बहुत आगे है। लेकिन लेखक का यह कहना है कि रणसुहे जी खैरालानजी की दलित हत्याओं को भूल गये हैं। डॉ० सिंह का मानना है कि उ०प्र० और महाराष्ट्र की स्थिति दलित समस्याओं के संदर्भ में एक जैसी है। इसी तरह कक्षा में बच्चों ने दलित

कथाकार शरण कुमार लिम्बाले के बारे में बताया कि वे आये तो दलित साहित्य पढ़ाने लेकिन एकतरफा दलितवाद बतियाते रहते थे। इतना ही नहीं, बच्चों द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर तुरंत उखड़ जाते और यहाँ तक कहते–'मत याद दिलाओ पुरानी बातें, अन्यथा....' आशय यह कि दलित लेखक अपने प्रति किये गये क्रूर एवं व्यवहारों को याद रखता है लेकिन वह इन अनुभवों की ऐतिहासिकता के प्रति उदासीन है(पृ०115)। लेखक का कहना है कि दलित बुद्धिजीवी ब्राह्मणों की ऐतिहासिक नियति और भूमिका को अभी नहीं समझ पाया है। यह सही है कि व्यवस्थागत ब्राहमणों ने अत्याचार किये हैं, लेकिन डॉ० सिंह का कहना है कि भारतीय इतिहास-लेखन ब्राह्मण चारवाक भी इस संख्या में कम नहीं हैं। लेखक ने विश्वविद्यालय पठन-पाठन की प्रशंसा की है और बच्चों के एक्सपोजर को बहुत व्यापक बताया है। मात्र 80 छात्रों के इस विश्वविद्यालय में राजनीति की विविधता भी अजीब है और लेखक के अनुसार जे०एन०यू० को छोड़कर शायद ही कोई देश का अन्य विश्वविद्यालय में छात्र राजनीति में इतनी विविधता हो। दलितवादी, नारीवादी, विदर्भवादी, मराठी और गैर मराठीवादी, ब्राह्मणवादी जैसे अनेक छात्र संगठन सक्रिय हैं।

पुस्तक का तीसरा भाग वर्धा दर्शन है जिसमें लेखक अपने साथी कभी डॉ०हेमचन्द्र वैद्य और अक्सर दुबे जी को लेकर वर्धा भ्रमण पर निकलता है। वर्धा विश्वविद्यालय के ओ०एस०डी० वैद्य जी लेखक को सेवाग्राम दिखाते हैं। डॉ० सिंह सेवाग्राम को देखकर अभिभूत हैं–दरअसल मार्क्सवाद और गाँधी की बीच की दीवार गंतव्य को लेकर नहीं रास्ते को लेकर है। गाँधी की अहिंसा बौद्ध महाकरुणा की आधुनिक अनुकृति है। डॉ० सिंह सेवाग्राम आश्रम में आदि कुटीर, बापू कुटीर इत्यादि के शास्त्रीय सादगी को देखकर बेहद प्रभावित हैं। उन्हें लगता है कि इस आश्रम में 'बैठे, चलते, श्रम करते, निर्देश देते या शाम को उपासना में लीन बापू दिखने लगते हैं। जो यह नहीं देख सकता उसे सेवाग्राम नहीं जाना चाहिए। लेखक के अनुसार इसे देखकर गाँधी के फिनिक्स टालस्टॉय और साबरमती की झलक मिल ही सकती है। गाँधी व्यक्ति और व्यक्तित्व को भी समझा जा सकता है। गाँधी ने अपने आश्रम आदि कुटी के 1936 में बनवाया था, और वहीं के श्रम और वहीं के सामान से। वहाँ का जवान पूर्णत: सामाजिक है–एक साथ रहना, एक साथ खाना, एक साथ सोना। दरअसल, सेवाग्राम एक विराट बाग है जिसमें तमाम तरह की कुटियाँ बिखरी पड़ी हैं। वर्धा के रेगिस्तान में केवल भौगोलिक नखलिस्तान में नैतिक नखलिस्तान भी है। बापू कुटी के सामने बरामदे में श्यामपट पर गाँधी का एक कथन उद्धृत है जो आधुनिक सभ्यता की समझ एक विशिष्ट नैतिक प्रश्नचिन्ह है–

'एक के बाद दूसरी अनेक सभ्यताओं का आविर्भाव हुआ, फूली-फली हैं उनका अवसान हुआ है और विलीन हुई हैं, और प्रगति संबंधी उनके ऊँचे ऊँचे दावों के बावजूद मैं पूछना

चाहता हूँ कि इनकी नियति क्या रही? क्या उद्देश्य था? डार्विन के समकालीन वालेश ने कहा अनेक खोजों और अन्वेषणों के बावजूद विगत पचास वर्षों के बाद मनुष्य की नैतिक ऊँचाई में एक इंच की भी वृद्धि नहीं हुई है'(पृ०125)।

इस प्रकार बहुत तरह के डिटेल्स इस पुस्तक में हैं– विशेषत: पवनार आश्रम और हिन्दी संस्थान तथा विश्वविद्यालय के बारे में। यह पुस्तक एक अनुभवी लेखक द्वारा लिखी गयी है। इस पुस्तक का एक-एक शब्द वर्धा, सेवाग्राम और पवनार आश्रम, विश्वविद्यालय इत्यादि को मानो दिखाता चलता है। मैंने गाँधी पर बहुत सारी पुस्तकें पढ़ी थीं। लेकिन 'गाँधी और उनका वर्धा' एक अपवाद सी लगती है।

O

Regd. No. 28871/76
ISSN 2279-0330

June-July 2013

Published by the Secretary on behalf of
J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu
and Printed at Classic Printers, Bari Brahamana, Jammu